सत्यम्
शिवम्
सुन्दरम्

श्री चन्द्रप्रभ

सत्यविजयस्मारक जैनग्रन्थमाला नं० २३.



पूज्यपादपरमगुरु आचार्यश्रीविजयनीतिसूरीश्वरपाद-
पद्मेभ्यो नमः ।

सुविहितपूर्वाचार्यप्रणीता

॥ गुरुतत्त्वसिद्धिः ॥



प्रकाशक—
श्रीसत्यविजयस्मारकजैनग्रन्थमाला



श्रीसत्यविजयस्मारक जैनग्रन्थमाला नं० १२.

॥ ॐ ॥

अर्हम् ।

पूज्यपादपरमगुरु आचार्यश्रीविजयनीतिसूरीश्वरपाद पद्मेभ्यो नमः ।

सुविहितपूर्वाचार्यप्रणीता

॥ गुरुतत्त्वसिद्धिः ॥

संशोधक—

अनुयोगाचार्य-पन्न्यासश्रीहर्षविजयगणिशिष्य-

मुनिश्रीमानविजय

प्रकाशक-श्रीसत्यविजयजैनग्रन्थमालायाः,

कार्यवाहक —

वाडीभाइ मूलचन्द्र शाह, अमदावाद.

वीर सं० २४५४] सत्य सं० २२९ [सन्ने १९२८

प्रथमावृत्ति, मूल्य १० आना प्रत ५००

प्रस्तावना

सुज्ञवाचक! जन्म जरा मरण रूप जलवडे परिपूर्ण,सर्व जगतने गळी जवामा समर्थ एवा लोभरूप वडवानले करीनेयुक्त, विषयरूप तरंगोए करीने चपल एवा संसारसमुद्रने विषे अनादि कालथी परिभ्रमण करता भव्यात्माओने संसारना दुःखथी मुक्त थवाने माटे तीर्थंकरोए सद्देव गुरु धर्म रूप तत्त्वोनु आराधन करवानु कहेलु छे, अढार दूषण रहित अने बार गुणे करीने युक्त एवा अरिहंत ते देव, पंचाचारना परिपालक ते गुरु अने केवलीकथित ते धर्म ए त्रणे तत्त्वो मळे परिपूर्ण श्रद्धा ते सम्यक्त्व, ए सम्यक्त्व ज मोक्षनु असाधारण कारण छे के जेना विना ज्ञान अने चारित्र पण यथोक्त फळ आपी शकता नथी ए त्रणे तत्त्वोनी अंदर गुरुतत्त्व मुख्य छे ? केम के जीवोने देवतत्त्व अने गुरुतत्त्वनु स्वरूप बतावनार गुरु महाराज होय छे,श्रीपाल चरित्रमा पण कहेलु छे के–

कारणं देवधर्म्माणां तत्त्वे भवति सद्गुरुः ।
स गुरुर्निन्दितो येन त्रयस्तेनावधूनिता. ॥ १ ॥

भावार्थ – देवतत्त्व अने धर्मतत्त्वनी प्राप्तिमा उत्तम गुरु महाराज कारणभूत छे केमके तेमना उपदेश विना ए तत्त्वोनु यथार्थ ज्ञान थइ शकतु नथी, माटे जे गुरु महाराजनी निंदा करे तेणे त्रणे तत्त्वोनु अपमान कर्यु समजवु, मुनिसुन्दरसूरीश्वरजी महाराज पण ए वातने पुष्टि आपता अध्यात्मकल्पद्रुममा लखे छे के

तत्त्वेषु सर्वेषु गुरुः प्रधानं हितार्थधर्मा हि तदुक्तिसाध्याः
श्रयंस्तमेवेत्यपरीक्ष्य मूढ ? धर्मप्रयासान् कुरुषे वृथैव ॥ २ ॥

भावार्थ – सर्व तत्त्वोने विषे गुरुतत्त्व मुख्य छे, केमके आ-

ग्माने हितकारक दानादिक धर्मों गुरु महाराजना उपदेशथी क री शकाय छे माटे हे मूढ ! परीक्षा कर्या विना तेज गुरुनो आश्रय करतो निरर्थक दानादिक धर्मना प्रयासो करे छे, आ उपरथी गुरुतत्त्वनी शुद्धिनी घणी आवश्यकता छे, परतु अवसर्पिणी कालना दोषथी जेम पृथ्वी आदि पदार्थोमां रूप रसादिनी हाणी देखाय छे, तेम वर्तमान कालना साधुओ पण तथाप्रकारना संघयण तथा शारीरिक बळना अभावे कदाचित् अपवाद रूपे अतिचारनु सेवन करता हशे तेथी केटलाक मंदबुद्धि जीवो सिद्धान्तनी गाथा बतावीने साधुओने अवंदनिक कहे छे परतु अपवादपदे अतिचारना सेवन करवा मात्रथी काइ सर्वथा चारित्रनो अभाव थतो नथी, भगवती सूत्रमा पाच प्रकारना निग्रन्थो कह्या छे, तेमां बकुशने उत्तर गुणना विराधक अने कुशीलने तो मूल गुण अने उत्तर गुण बन्नेना विराधक कहेल छे ए बन्ने निर्ग्रन्थो सर्व तीर्थंकरोना तीर्थपर्यंत अनवस्थित होय छे तेथी देशकालने अनुसरीने सर्व शक्तिए करीने चारित्रनु पालन करनारा साधुओ पण बकुश अने कुशील पणाथी भिन्न नथी माटे वदनिकज छे, ए बाबतनी ग्रथकारे सिद्धान्तनी साक्षीयो आपीने युक्तिपूर्वक सारीरीते सिद्धि करी छे तेथी ए ग्रन्थनु नाम योजके गुरुतत्त्वसिद्धि राखेल छे आ पुस्तकनो लगभग चउदआनी भाग सिद्धान्तना पाठोथी भरपूर छे फक्त बे आनी भाग जेटलु लखाण कर्त्तानु देखाय छे, पुस्तकनी अतमा ग्रन्थकारे पोतानु नाम आप्यु नथी, तेथी अमे सुविहितपूर्वाचार्यप्रणीत एटलुंज नाम राख्यु छे,

आ ग्रन्थनी बे प्रतो अमने "डहेलाना उपाश्रयना भडारमाथी मली छे, तेमा एक प्रत सात पानानी अने त्रीजी अगीयार पाना

नी भने साथ शुद्ध हती ए बन्ने पुस्तकोने आधारे सशोधन करीने आ ग्रन्थ छपाव्यो छे,वाचकनी सरलताने माटे केटलेक स्थले टीप्पणीयो पण मुकी छे अने गुजराती वाचनाग पण एनो लाभ लेई शके ते माटे आदिमा ग्रन्थपरिचय आप्यो छे, ग्रन्थनी अन्तमा प्रतिमागुणदोषविचार नामनु लघु पुस्तक दाखल कर्युं छे, जे वर्तमानकालमा पण उपयोगी छे ए पुस्तकनी एकज प्रत अमने इडेलाना भडारमाथी मली छे, तेमा बे प्रकरणो छे, एक जिनपरीक्षाप्रकरण अने बीजु जिनपूजास्वरूप ए पुस्तक बहुज अशुद्ध होवाथी अने बीजी आदर्श प्रत मली शकी नहि तेथी आ पुस्तक बनती रीते सुधारीने छपाव्यु छे ए बन्ने पुस्तकोनी शुद्धि तरफ पुरतु लक्ष्य आप्यु छे, छता क्याइ दृष्टिदोषथी अथवा प्रेसना दोषथी भूलो रही गयली जणाय तो विद्वानोए क्षमा करवी अने सुधारीने वाचवु अगर ए भूलो सुधारीने कोइ महाशय अमने लखी मोकलशे तो बीजी आवृत्तिमा सुधारो करीशु इति शम् ॥

अमदावाद
स॰ १९८४ फाल्गुन
शुक्ल पञ्चमी

लेखक —
मुनि श्री मानविजय

॥ श्रीमत्पन्याससत्यविजयजीगणीनु जीवन चरित्र ॥

१ जन्म, साधु उपदेश.

हालमां माळवा देशथी ओळखता सपादलक्ष देशमां लाड छुं नामनुं गाम हतुं अहीं वेपार सारो चालतो हतो. दूगड गोत्रना वीरचंद नामे शेठ वसता हता, अने तेनी भार्यानु नाम वीर मदे हतुं बंने धर्मिष्ठ हता, अने तेमने शिवराज नामनो पुत्र थयो बालपणामां तेने धर्म प्रत्ये सारी भावना हती. एक दिवस त्या एक मुनिराज पधार्या तेना दर्शनथी पोताने उंडी छाप पडी. अने उपदेशथी प्रतिबोध पाम्यो. मा अने बापने दीक्षा माटे रजा आपवा बहु प्रार्थना करी, आखर शिवराज एकनो बे थयो नहि अने तेणे माबापने समजावी रजा लीधी, पछी माबापे कह्यु के 'तु लुंकामा (हालना स्थानकवासी) दीक्षा ले तो ते पथना आचार्यने तेडावी सारो दीक्षा समारभ करावुं ' त्यारे शिवराजे कहुं के जे गच्छ सुविहित– सारी विधि पाळनार छे अने जेमां शुद्ध सामाचारी–क्रिया छे अने जेमा जिनराजनी पूजा करी शकाय छे ते गच्छमा हुं सयम लेवानो छु आथी माबापे तपागच्छमा पुत्रनु मन स्थिर जोइ श्रीविजयसिंहसूरिने तेडाव्या,पुत्रे तेमनी पासेउत्सवपूर्वकदीक्षा१४वरसनीउमरेलीधी,नामसत्यविजयआपवामां आव्युं.

२ अभ्यास, क्रियोद्धार.

आ पछी शास्त्र सिद्धातनो अभ्यास गीतार्थमुनि पासेथी करवा लाग्या, अने उत्कृष्ट क्रिया पाळवा लाग्या आमनी क्रिया बहु विख्याती पामी अने उत्तम वैरागी पुरुष ओळखाया पछी तेमने गच्छनी परिस्थिति जोता जणायु के क्रियामा शिथिलता बहु छे तो तेनो उद्धार करवानी जरुर छे, तेथी गुरु आचार्य श्री विजयसिंहसूरिनीरजालइतेनाप्रयाणअर्थेविहारकर्यो 'रास'मां लखेछेकेः—

'श्री आचारज पूछीने, करूं क्रिया उद्धार,
निज आतम साधन करूं बहुने करु उपगार.

श्री गुरुचरण नमी करी, करजोडी ते नारोरे,
' अनुमति जो मुजने दियो, तो करु क्रिया उद्धारोरे श्री
काल प्रमाणे खप खरु, दोषी हलु कर्म टलेवारे,
तप करु आलस मूकीने, मानव भवनु फल लेवारे ' श्री
गुणवत गुरु इणि परे कहे, ' योग्य जाणीने सुविचारोरे,
जिम सुख थाय तिम करो, निज सफल अवतारोरे. ' श्री.
धर्म मार्ग दीपाववा, पागरीया मुनि एकाकीरे,
विचरे भारडनी परे, शुद्ध सयमशु दिल छाकीरे श्री.
सहे परिषह आकरा, शोषे निज कोमल कायारे,
क्षमता समता आदरी, मेली सहु ममता मायारे श्री

एक दिवस श्री सत्यविजयजीए श्री विजयसिंहसूरिने कह्यु के ' आपनी आज्ञा होय तो हु क्रियोद्धार करु द्रव्य, क्षेत्र काल अने भाव प्रमाणे सयम पाळु ' आचार्य कह्यु के ' जेम सुख थाय तेम करो (जहा सुखम्म देवाणुप्पिया)' आथी सत्यविजयजीए धर्ममार्गनेदीपाववा भारडपक्षीनी पठेअप्रमत्तपणेएकाकीविहार कर्यो

३ विहार

मेवाडना उदेपुरमा चोमासु कर्युं घणा लोकोने प्रतिबोध आपी धर्ममा स्थिर कर्या. छट्ठ छट्ठना तप करवा लाग्या त्याथी मारवाडमा आव्या त्या पण जैनधर्म घणाने पमाड्यो. पछी मेडता गाममा के ज्या श्री आनंदघनजी पण ते प्रसगे रहेता हता अने ज्या हाल ते' मनी देरी छे त्यां आवी चोमासु कर्युं अहींथी विहार करता ना गोर आवी चोमासु कर्युं, त्याथी जोधपुर चोमासु कर्युं एम देश विदेश अप्रतिबधपणे विहार करी लोकोपर परम उपकार कर्यो.

४ पन्यासपद स १७२९.

श्री विजयसिंहसूरिना पट्टाधीश श्री विजयप्रभसूरिए पोताना ह स्तथी सोजत गाममा स १७२९ मा सत्यविजयजीने पन्यास पद आपवामा आ युं हतु अहींथी पोते सादडीचोमासुकर्यापछी गुजरा-

तमाअनेकस्थळेविहारकरताकरताश्रीसत्यविजयपाटण आवीपहोंच्या.

५ स्वर्गवास

क्रियानी उग्रताथी शरीर कृश थइ थइ गयुं हतुं, ब्यासी वर्षनी उमर हती अने वृद्धावस्था पूरी आवी हती तेथी पोते पाटणज त्यु वखत छेल्ला भागमा रह्या. अहीं राजनगरना शेठ सोमकरण शाहना पुत्र सुरचदशाह पन्यासजीने खास वांदवा अर्थे आव्या हता अने रुपैयादिक नाणावती तेमना अग पूजता हता. कोइ श्रावके उपवासनां व्रत लेता हता, कोइ बीजा मतो स्वीकारता हता पण धर्मनो प्रभाव सारो देखातो हतो. अहीं सवत् (१७५६ ना) पोष सुद १२ शनिवारने सिद्धियोगे पंन्यासजी स्वर्गलोक सिधाव्या. आथी आखा नगरमा हाहाकार वर्ती रह्यो धर्मी श्रावको सुगुरुना स्वर्गगमननिमित्ते उत्सवकरताहता अने सोनारुपाना फूलउछाळताहता आना स्मरणार्थ पाटणमा तेवखते स्थूभ-स्थभकर्यो हतो

अन्य विगतो (१) वनवास.

श्री सत्यविजय महाराज सबंधी हकीकत रासमाथी उपर प्रमाणे नीकळे छे परतु बीजा स्थळोएथी जे जे विगतो प्राप्त थाय ते अहीं जणावीए छीए. श्री आत्मारामजीकृत जैनतत्त्वादर्शमा पृ ६-८ मां नीचे प्रमाणे जणाव्यु छेः—

"श्री सत्यविजय गणीजी क्रिया उद्धार करी श्री आनदघनजी साथे बहु वर्ष सुधी वनवासमा रह्या, तथा महातपस्या योगाभ्यास प्रमुख कर्यु, ज्यारे बहुज वृद्ध थइ गया अने पगमा चालवानी शक्ति न रही त्यारे अणहिल्लपुर पाटणमा आवी रह्या."

आ वातने आ रासमांथी टेकोमळे छे. जुओ नीचे जणावेल छे केः—

धर्ममार्ग दीपाववा, पागरीया ढुंि एकाकी रे,
विचरे भारडनी परे, शुद्ध मयमश्यु दिल छाकी रे
सहे परिषह आकरा, शोषे निज कोमळ काया रे,
खपता सपता आदरी, मेली सहु ममता माया रे,

कीधो विहार मेवाडमा उदेपुर कियो चोमासा रे,
धर्म पमाड्यो लोकने, कीधो तिहां धर्मनो वासो रे
छठे छठने पारणा कीधा, तप जास न पारो रे,
काया कीधी दुबळी, करी अरस नीरस आहारो रे

वळी अध्यात्मरसिक वनवासी श्री आनन्दघनजी महात्मा घणे भागे मेडतामां रह्या हता, एवु लोककथा परथी जणाय छे, अने त्यां सत्यविजयजीये चोमासु कर्युं हतुं एम रासमां आपल छे तेमज श्री आनंदघनजी,श्रीयशोविजयजी,श्रीविनयविजयजी,ज्ञानविमलसूरितथा श्रीमानविजयउपाध्यायआदिसमकालीनहताए निर्विवादछे

(२) पोते कया देशना हता

संवेगी पट्टावलीना आधारे सत्यविजयजी मेदपाट (मेवाड) देशना हता अने तेनी आ निर्वाण साक्षी पूरे छ, परंतु यतिवगनी पट्टावलिमा ते गधारना शान्तिदास श्रावक हता एम जे नीकळे छे ते सत्य होवानो संभव नथी

(३) पीतवस्त्रांगीकार.

आ वखतमां स्थानकवासी (अमूर्तिपूजक) पंथ विद्यमान थयो, अने तेना साधुओ पण श्वेतवस्त्र पहेरता, तेथी श्वेतांबरीय मूर्तिपूजक अने तेमनी वच्चे भेद जाणवानु नगरर रह्यु नहि, तथो कल्लाक साधुओए पीतवस्त्र पहेरवानु स्वीकार्युं यतिनी पट्टावलि जोता श्री यशोविजयजीए काथीया कर्या हता एम जणाइ आर छे अने तेनी साथे विजयप्रभसूरिने श्री स यविजय गणिए न रा-ख्या अने सामा पछी काथीया वस्त्र धारण कर्या एम यतिनी बृहत् पट्टावलिमा जोवामा आवे छे आनो निश्चय आ निर्वाणरासथी थतो नथी, परंतु श्री सत्यविजयजीनी शिष्य परंपरामांज थयला (जुओ आगळ) पंडित वीरविजयजी आ संबंधे कइ उल्लेख करे छे ते तपासाए, तेओ पोताना धम्मिलकुमार रास तथा चंद्रशेखर रासमा पोतानी जे प्रशस्ति आप छे तेमां नीचे प्रमाणे दर्शाव्यु छे –

तपगच्छ कानन कल्पतरूपम, विजयदेव सूरि रायाजी;
नाम दशोदिश जेहनु चावु, गुणीजन वृंदे गवायाजी
विजयसिंहसूरि ताम पटधर, कुमति मतगज सिंहोजी,
तास शिष्य सूरिपदवी लायक, लक्षण लक्षित देहोजी. १
संघ चतुर्विध देश विदेशी, मलिया तिहा सकेतेजी,
विविध महोत्सव करता देखी, निज सूरि पदने हेतेजी.
प्राये शिथिलपणु बहु देखी, चित्त वैरागे वासीजी,
सूरिवर आगे विनय विरागे, मननी वात प्रकाशीजी २
' सूरिपदवी नवि लेवी स्वामी, करशु किरिया उद्धारजी '
कहे सूरि 'आ गादी छे तुमशिर, तुम वश सहु अणगारजी.'
एम कही स्वग सधाव्या सूरिवर, सघने वात सुणावीजी,
सत्यविजय पंन्यासनी आणा, मुनिगणमा वरतावीजी. ३
सघनी साथे तेणे निज हाथे, विजयप्रभसूरि थापीजी,
गच्छनिष्ठाए उग्र विहारी, सवेगता गुण व्यापीजी.
रगीत चेल लही जग वदे, चैत्य धजाए लक्षीजी,
सूरि पाठक रहे सन्मुख उभा, वाचक जस तस पक्षीजी. ४
मुनि सवेगी गृही निर्वेदी, त्रीजो सवेग पाखीजी,
शिव मारग ए त्रणे कहीए, इहां सिद्धात छे साखीजी.
आर्यसुहस्तिसूरि जेम वदे, आर्यमहागिरि देखीजी,
दो तिन पाट रही मरजादा, पण कलिजुगता विशेखीजी ५
ग्रहील जलासी जनतापासी, नृपमंत्री पण भलीयाजी

अर्थ—तपगच्छ रुपी वनमा कल्पवृक्षनी उपमा पामेल श्री विजयदेवसूरि थया के जेनु चावु (मराठी 'चागलुं'—सारु) सुंदर नाम दशे दिशाए गुणीजनना समूहे गायु छे; तेना पट्टधर, कुमति रुपी हाथीओमा सिंह जेवा विजयसिंह सूरि थया अने तेना शिष्य, लक्षणथी लक्षित-अंकित थयेल देहवाळा (सत्यविजय) सूरिनी पदवीने लायक थया

दशे दिशाएथी चतुर्विध सघ आगळ्यी सकेत प्रमाणे तेने सूरिपद आपवा भेगो मळयो, (श्री सत्यविजय) पोताने सुरिपद आपवा माटे आ सघने जुदी जुदी जातना महोत्सव करता जोइ अने वैराग्यवाळु पोतानु चित्त सरकारित थयेलु होवाथी शासन मा प्राय'शिथिलपणु देखी (श्री विजयसिंह) सूरि पासे विनय अने वैराग्यथी पोताना मननी वात प्रकाशित करी के 'हे स्वामिन् मारे सुरि पदवी लेवी नथी मारी इच्छा तो क्रिया उद्धार करवा नी छे तो ते करीश '–त्यार सूरिए कह्यु के "आ गादी–गच्छगादी तमारे शिरे छे अने तमारे वश तमारी आज्ञा नीचे सौ मुनिपरिवार छे आम कही ते सूरिवर स्वर्ग सिधा-या, अने तेमणे कहेलु कथनसघनेसुणावनासत्यविजयपन्यासनीआज्ञामुनिगणमामवर्त्यो ३

श्री सत्यविजयजीए स घनी साथे पोताने हाथे रही विजयप्रभने सूरिपदपर स्थाप्या, अने गच्छनिष्ठा राखी उग्रविहार करी क्रियोद्धारथी स वगनो सत्य गुण व्याप्त कर्यो जेवी रीते उटेथी ध्वजा देखीने लोको चैत्यजिनालय होवु जोइए, एवु अनुमान करी हाथ जोडे छे–वद"ा कर छे, तवीज रीते सत्यविजय गणिए र गित–रगेला (पीत) वस्त्र अगीकार करला होवाथी तने तेमज त ना परिवारना साधुओने ते वस्त्रो उपरथी तेओ खरा सवेगी होवा जोइए एम अनुमान करी लोको तेमने वदना कर छे आ श्री स त्यविजयजी एवा प्रभावक हता क तेनी समक्ष सूरि (श्री विजयप्रभसूरि), पाटको उभा रहेता हता–मान आपता हता, अने तेना पक्षमा–क्रियोद्धारना पक्षमा वाचक श्री जश (यशोविजयजी) हता.

सिद्धातमा ए वातनी साक्षी पूर छे क सवगी मुनि, निर्वेग्नी गृहस्थ, अने सवेगपक्षी (सवगीने अनुमोदनारा)–आ त्रण शिवमार्ग ल्इ जनारा छे, पर तु (कलियुगनु) माहात्म्य कइ ओर छे ! जुओ ! आर्यसुहस्ति पोत सूरि हता छता, आय महागिरि

सूरि न होवा छता ते उग्रक्रियाधारी होवाथी तेने वंदना करता हता, अने तेवो क्रम बे त्रण पाट सुधी रह्यो पण पछी न रह्यो कारण के कलियुगनी विशेषता छे, आ माटे दृष्टांत आपे छे. जेम आखुं नगर घेला बनावनारु जल पीवाथी गांडु थइ गयु अने राजा अने प्रधान के जेओ ते जल पीधु न होवाथी डाह्या रह्या हता तेओने पण ते गांडाओमा भळवु पडयु (कारण तेम न करे तो गांडा तेओने त्रास आप्या वगर न रहे.) तेम कलियुग आवतो गयो तेम क्रिया ओछी थती गइ, अने क्रिया प्रत्ये जोइए तेवु मान पणनरह्यु,तेथीक्रियापरायणनेक्रियानकरनारासाथेचलावीलेवुं पडयु.

(४) क्रियाउद्धारमा श्री यशोविजयजीनी सहाय

मूळ श्री जिनहर्षरचित श्री सत्यविजयजीना रासमां क्रियोद्धार करवामा कोइपण सहायकर्ता हतु एम दर्शावेल नथी, परंतु उपर जणावेल श्री वीरविजयजी पंडिते आपेली प्रशस्तिमा ' वाचक जश तस पक्षीजी ' एम चोख्खु लखेल छे आ संबंधमां वीरविजयजी १९ मा सैकामां थइ गया तेना पहेलानो समय जोइए तो विशेष समर्थन मळेछे,केश्रीयशोविजयजीए सहाय आपी छे श्री यशोविजयजी पोते ३५० गाथाना स्तवनने अंते लखे छे केः—

तास पाटे विजयदेवसूरीसरु, पाट तस गुरु विजयसिंह धोरी
जास हित शीखथी मार्ग ए अनुसर्यो,जेहथी सवीटली कुमति चोरी

आनापर स १८३०मांटबोकरनारश्रीपद्मविजयजीअर्थ पूरे छे के'—

" वळी तेने पाटे श्री विजयदेवसूरि थया, तथा तेमना पाटे श्री विजयसिंहसूरि ते गच्छनो भार वहेवाने वृषभ समान धोरी थया जेमनी हितशीख आज्ञा पामीने मे ए संवेगमार्ग आदर्यो, एटले ए भावने श्री जशोविजयजी उपाध्याये पण एओनी आज्ञा पामीने क्रियाउद्धार कर्यो, तथा श्री विजयसिंहसूरिना शिष्य अनेक हता तेमा सत्तर शिष्य सरस्वती बिरुदधारी हता ते सर्वमां मोटा शिष्य पंडित श्री सत्यविजयजी गणी हता. तेमणे(विजयसिं-

जेम अपवित्र स्थानमां पडेली सुगधमय चंपकपुष्पनी माला मस्तक पर धारण कराती नथी, तेम पासत्था आदिक स्थानमां वर्तता मुनि पण अपूजनिक छे, ए प्रमाणे आवश्यकनिर्युक्तिनो पाठ आपीने वदननो निषेध करे छे तेमने ग्रंथकार पुछेछे के- वर्तमान काळना साधुओने शु तमे पासत्था अवसन्ना कुशील संसक्त के यथाच्छन्द मानो छो ? सर्वथी तो पासत्था कही शकाशे नहि, कमके सर्वथी पासत्थानुं लक्षण आवश्यक निर्युक्तिमां आ प्रमाणे कह्यु छे—

" सो पासत्थो दुविहो सव्वे देसे य होइ नायव्वो ।
सव्वमि नाणदसणचरणाण जो उ पासमि ॥ १ ॥

भावार्थः—ते पासत्थाना बे भेद छे, सर्वथी अने देशथी, जे ज्ञान दर्शन अने चारित्रनी पासे रहे पण तेओना आचारनु बीलकुल पालन करे नहि ते सर्वथा पासत्थो जाणवो, वृद्धपुरूषो पण पासत्थाना लक्षणो आ प्रमाणे बतावे छे—रात्रीए राखेली वस्तु खाय, निर्वाह थइ जतो होय छतां पोताने माटे करली वस्तु ग्रहण करे, जळ फळ फूल आदि सर्व सचित्त वस्तुओ वापरे, हम्मेशा बे त्रण वार भोजन करे, विगइ लवग एळची पान सोपारी विगेरे वापरे, शय्या जोडा घोडागाडी तांबाना पात्रो वापरे, जरूर पडे त्यारे रजोहरण मुखवस्त्रिका देखावमाटे धारण करे, एकला फरे, स्वच्छन्द पणे ज्या त्या उभा रहे, देरासर तथा मठादिमा रहे, पूजानो आरभ करे, हम्मेशा एकस्थाने रहे, देवद्रव्यनो उपभोग करे, जिनालय पौषधशाळा विगेरे करावे, स्नान उद्वर्तन विलेपन आदि शरीरनी शोभा करे, द्रव्यसग्रह करे, ग्राम कुळादिमत्ये ममत्वभाव राखे, स्त्रीओनो परिचय करे, नरकगतिना कारणरूप ज्योतिष्—नि

मित्त-वैदक-मंत्रादिना प्रयोगो करे, सुविहित साधुओ प्रत्ये द्वेष राखे, तेमनी पासे धर्मकार्य करवानो निषेध करे, शासननी प्रभावना ने माटे बीजाना दोषो प्रगट करे, लोभने माटे गृहस्थनी स्तुति करे, जिनप्रतिमानो क्रय-विक्रय-उच्चाटन-आदि क्षुद्र कार्य करे, सर्व लोकोने राजी राखवाने माटे मुहूर्त्त विगेरे आपे, शालामा अथवा गृहस्थने घेर यज्ञो विगेरे करावे, सांसारिक फलने माटे यक्षादि देवोनी पूजा करवानुं कहीने मिथ्यात्वनी वृद्धि करे इत्यादि सर्व पासत्थाना लक्षणो जाणवा, वर्त्तमानकालना सर्व साधुओ आवा लक्षणवाळा नथी, केमके केटलाक साधुओ तो वर्त मानकाले पण सर्वशक्तिए करीने चारित्रने विषे उद्यमवत देखाय छे, माटे सर्वथी पासत्था कही शकाशे नही,हवे देशथी जो पासत्था कहेता हो तो तेनु लक्षण बताओ. त्यारे प्रतिवादी कहे छे के-जे साधुओ विना कारणे शय्यातरपिंड-सामो लावेलो आहार, राज पिंड-नित्यपिंड-अग्रपिंड वापरे, कुलनी निश्राए विचरे, कारण सिवाय स्थापनाकुलोमा प्रवेश करे, संखडी (जमणवार)मां जोवा जाय तेमज स्तुति करे, तेने देशथी पासत्थो जाणवो, ए प्रमाणे आवश्यक निर्युक्तिमा कह्यु छे, त्यां शास्त्रकार कहे छे के-उपरोक्त सर्व लक्षणो जेनामा घटता होय, तेने तमे देशथी पासत्था कहो छो, के भिन्न भिन्न लक्षणवाळाने ? भिन्न भिन्न लक्षण वाळाने तो देशथी पासत्थो कहीशकाशे नही कमके- स्थूलिभद्र-महाराज कोशाने घेर चतुर्मास रह्या अने त्यां चारे मास सुधी तेना घरनो आहार लीधो जेथी शय्यातरपिंडनो दोष लाग्यो छे तोपण शास्त्रकारे तेमने देशपासत्था कह्या नथी.

जेने माटे आवश्यक सूत्रनी म्होटी टीकामा योगसंग्रहने विषे कह्यु छे-"थूलभद्दसामी तत्थेव गणिआघरे भिक्खं गेण्हइ"

इति हवे जो सामुदायिक पक्ष ग्रहण करना होमो, वर्तमान साधुओमां पण कटलाक साधुओने विषे शय्यातर अभ्याहृत राजपिंड ग्रहणाग्निरूप दोषनो अभाव होवाथी, देशथी पासत्था पण केवी रीते कही शकाय ? एवी रीते अवसन्नादिपणानी पण निर्णय जाणवो, शास्त्रकार मतिवादीने शिखामण आपता कहे छे के हे सौम्य ? सम्यक् सिद्धान्तना रहस्यने नहि जाणता छतां पासत्था आदिना दोषोनु आरोपण करीने वर्तमान साधुओने तु फोगट शामाटे दूषित करे छे ? जेने माटे निशीथसूत्रमा कह्यु छे के—

सतगुणछायणा खलु परपरिवाओ अ होइ अलियं च ।
धम्मे अरज्जमाणो साहू पउसे य संसारो ॥ १ ॥

भावार्थ – विद्यमान गुणोने ढांकवाथी अछता दोषो प्रगट करवाथी असत्य बोलवाथी धर्मने विषे अप्रेम उत्पन्न करवाथी साधु प्रत्ये द्वेष राखवाथी ससारनी वृद्धि थाय छे, माटे जो मोक्षनी अभिलाषा होय तो मात्सर्यता दूर करीने सम्यक् प्रकार यत्नने साधन्त ! शास्त्रमां पुलाक बकुश कुशील निग्रन्थ स्नातक ए पाच प्रकारना निग्रन्थो कह्या छे–सयमस्पसारनी अपेक्षाए जेनु चारित्र नि सार होयते पुलाक, उपकरण अने शरीरने शुद्ध राखनारा परिवार प्रमुख ऋद्धि यशने इच्छनारा अने सुखनो आश्रय करनारा छेद योग्य सातिचार चारित्रवाला निर्ग्रन्थो ने बकुश कह्या छे

कुत्सित निन्दनीय जेनु चारित्र होय ते कुशील पुरुषवेद स्त्री वेद नपुंसकवेद हास्य रति अरति भय शोक दुगछा मिथ्यात्व क्रोध मान माया लोभ आ १४ प्रकारनी मोहनीय कर्मनी अभ्यन्तर ग्रन्थीनो जेमणे क्षय कर्यो होय ते निग्रन्थ, ज्ञानावरणीय दर्शनावरणीय मोहनीय अने अतराय ए चार घातिकर्म रूप मलना समूह

थी जे रहित थया होयते स्नातक तेमा बकुश अने कुशील तो सर्व तीर्थंकरोना तीर्थपर्यंत वर्तता होय छे, तेमां पंचमहाव्रत रूप मूलगुण अने दशविध प्रत्याख्यानरूप उत्तरगुण एटले मूलगुण अने उत्तरगुणविषयक चारित्रनी विराधना पुलाकने विषे होय छे, आचारनी विरुद्ध प्रवृत्ति करवी ते प्रतिसेवना ए प्रतिसेवना कुशीलने विषे होय छे, उत्तर गुणविषयक विराधना बकुशनेविषे होयछे, बाकीना निर्ग्रन्थ अने स्नातक तो प्रतिसेवना रहित होय छे, बकुशना बे भेद छे उपकरणबकुश अने शरीरबकुश तेमा जे उपकरणबकुश होय ते शेषकालमां पण वस्त्रो धोवे अने विभूषा माटे बारीक वस्त्रो वापरे, तथा खरपाषाणथी घसेला सुवाला पत्थरथी घसीने सुकोमल करेला अने तेलनेल लगाडीने तेजस्वी बनावेला पात्र अने दांडा विगेर शोभाने माटे धारण करे घणा उपकरणोनो संग्रह करे ते उपकरणबकुश, अने जे शरीरबकुश होय ते अशुचि नेत्रविकारादि कारण विना हाथ–पग–नख–मुखादि शरीरना अवयवोने साफ करे, पाडित्यतपादि करीने यशनी इच्छा राखे यश थए छते संतोष पामे, सुखशील थयेलो अहोरात्रि धर्मानुष्ठानने विषे उद्यम न करे, तैलादिवडे पगे मर्दन करे वाल कापे, तेनो परिवार पण असंयमवान् अने वस्त्र पात्रादिने विषे ममत्वभाववालो होय छे ते शरीरब श कहेवाय

उपकरणबकुश अने शरीरबकुश ते बन्नेना पाच पांच भेदो छे– आ कार्य साधुने करवा योग्य नथी एम जाणता छता जो करे तो ते आभोगबकुश १ अजाण पणे करे तो ते अनाभोगबकुश२ लोकोना जाणवामा न आवे एवी रीते उत्तर गुणने विषे अतिचारनु सेवन करे ते संवृतबकुश ३ प्रकटपणे अतिचार-

नु सेवन करे ते असङ्गनवकुश ४ अने नेत्र नासिका मुखादिना मळने साफ करे तो ते यथासूक्ष्मवकुश ५

कुशीलना बे भेद छे प्रतिसेवनाकुशील अने कषायकुशील विराधकपणाए करीने जे कुशील ते प्रतिसेवनाकुशील अने सञ्ज्वलनना उदयरूप कषायोए करीने कुशील ते कषायकुशील, ते प्रतिसेवना कुशीलना पाच भेद-जे ज्ञाननो आश्रय करीने ज्ञाननी विराधना करे ते ज्ञानप्रतिसेवनाकुशील१ एप्रकार दर्शननी विराधना करे ते दर्शनप्रतिसेवनाकुशील २, चारित्रनी विराधना करे ते चारित्र प्रतिसेवनाकुशील ३,तपनी विराधना करे ते तपकुशील४,आ तपस्वी छे एवी प्रशसा करवाथी तुष्टमान थाय ते यथासूक्ष्मप्रतिसेवना कुशील ५,

कषाय कुशीलना पाच भेद छे सञ्ज्वलनकषायना उदयवाळो थइ ने ज्ञाननी विराधना करे ते ज्ञानकषायकुशील १ एवी रीते दर्शननी विराधना करे ते दर्शनकषायकुशील २ तपनी विराधना करे ते तपकषायकुशील३कषायाविष्ट थइने शाप आप ते चारित्रकषायकुशील ४ मनथी क्रोधादि कषायोनु सेवन करे ते यथा सूक्ष्मकषायकुशील ५,

आ बाबत उत्तराध्ययन सूत्रना ६ अध्ययननी म्होटी टीकामा विस्तारथी कहली छ, प्रतिसेवनाकुशील मूलगुणनी विराधना करतो थको कदाच उत्तर गुणोनी पण विराधना करे छे, तेने माटे भगवतीसूत्रमा कहुछे के-

बउसेण पुच्छा ? गोयमा ? पडिसेवए होज्जा, अप्प डिसेवए होज्जा ? जदि पडिसेवए होज्जा, किं मूलगु णपडिसेवए होज्जा, उत्तरगुणपडिसेवए होज्जा ? गोय मा नो मुलगुणपडिसेवए होज्जा, उत्तरगुणपडिसेवए होज्जा, तथा पडिसेवणाकुसीले जहा पुलाए, मूलगुणप- डिसेवए होज्जा उत्तरगुणपडिसेवए होज्जा ॥ भगवती- सूत्रशतक, २५ उद्देशो ६

भावार्थः— बकुशनो प्रश्न– हे गौतम ! बकुश विराधक पण होय अने अविराधक पण होय, जो विराधक होय तो मूळगुण विराधक होय के उत्तरगुण विराधक ? हे गौतम ! मूळ गुणविराधक न होय, पण उत्तर गुण विराधक होय, तथा प्रतिसेवना कुशील तो पुलाकनी माफक मूळ गुणविराधक अने उत्तर गुणविराध क होय छे, अहिंया मूळ गुण अने उत्तर गुणना विराध- कपणाने विषे पण पुलाकादि मुनिओनु जे निर्ग्रन्थपणु कह्यु छे, ते जघन्य जघन्यतर अने उत्कृष्ट उत्कृष्टतरभेद वाला संयमस्थानोनी अपेक्षाए जाणवु माटे पासत्था आदिना लक्षणो तपासवाना बलेथी करीने सर्यु ! श्री जिनवल्लभसूरि पण द्वादशकुलकप्रक- रणमां लखे छे के– कदाचित् कालादिकना दोषथी तेवा गुण सपन्न साधुओ न देखाता होय तेथी सर्वत्र तेवा साधुओनो अभा- व छे एवो अविश्वास तो नज राखवो, केमके जे साधुओ कदाग्रह रूप कलंकथी रहीत होय अने सर्वशक्तिए करी आगमने अनु- सारे चारित्रने विषे उद्यमवन्त होय तेवा साधुओने विशुद्ध चारित्र

वान् जाणवा ए प्रमाणे अरिहनना सिद्धान्तनेविष कह्यु छे. वली व्यवहारसूत्रना पहेला उद्देशामा पण कह्यु छे के-

"चोअग ! छक्कायाण तु सजमे जोऽणुधावए ताव(जाव) मूलगुणउत्तरगुणो दोण्णि वि अणुधावए ताव ॥ १ ॥

भावार्थ – हे प्रश्नक ? ज्या सुधी पृथ्वी अप् तेज वायु वनस्पति अने त्रस ए छक्काय जीवो ने विषे सयमना मार्गे फरीने वर्ते छे एटले छक्काय जीवोनी रक्षाकर छे त्या सुधी चारित्रना मूल अने उत्तरगुणो होय छे माटे देशकालने अनुसरीने चारित्रने विषे उद्यमवत साधुओ बकुश अने कुशीलपणाथी भिन्न नथी माटे शास्त्रानुसार वदनीकज छे एम सूचववानो आ ग्रन्थनो मुख्य उद्देश छे. इत्यल विस्तरेण ।



अमदावाद सं० १९८४ फाल्गुन शुक्ल पचमी	लेखक — मुनि श्री मानविजय.

अर्हम् ।

पूज्यपादपरमगुरु आचार्यश्री विजयनीतिसूरीश्वरपाद-
पद्मेभ्यो नमः ।

सुविहितपूर्वाचार्यप्रणीता—

॥ गुरुतत्त्वसिद्धिः ॥

॥ नमः श्रीश्रुतज्ञानाय ॥

श्रीवर्द्धमानप्रभुमद्भुतर्द्धिं,
श्रीमत्सुधर्मादिगुरून् गिरं च ।
जिनागमांश्चाप्यभिवन्द्य हृद्य--
युक्त्या ब्रुवे श्रीगुरुतत्त्वसिद्धिम् ॥१॥

इह केचिद्धर्मार्थिनोऽपि काश्चित्सिद्धान्तगाथाः केषा-ञ्चित्पार्श्वेऽधीत्य तदध्ययनादेव दुर्दैववशाज्जातमतिविप-र्यासा एवं ब्रुवते, साम्प्रतं ये साधवः कालोचितयतनया यतमाना दृश्यन्ते, तेऽपि न वन्द्याः। यतः श्रीआवश्यके—

"पासत्थो१ ओसन्नो२ होइ कुसीलो३ तहेव संसत्तो४ ।
अहच्छंदो५ वि य एए अवंदणिज्जा जिणमयम्मि॥१॥"

---

१ व्याख्या—किलेयमन्यकर्तृकी गाथा तथाऽपि सोपयोगा चेति व्याख्यायते। तत्र पार्श्वस्थः दर्शनादीनां पार्श्वे तिष्ठतीति पार्श्वस्थः,अथवा मिथ्यात्वादयो बन्धहेतवः पाशाः पाशेषु तिष्ठतीति पाशस्थः,-

'सो पासत्थो मव्वे दुविहो देसे य होइ णाय व्वो । स`यमि णाणदंसणचरणाण जो उ पासमि ॥ १ ॥ देसमि य पासत्था सिज्जायरऽभिहड राय पिंड वा । णियय च अग्गपिंड भुजति णिक्कारणेण च ॥२॥ कुलणिस्साए विहरइ ठवणकुलाणि य अकारणे विसइ । सखडिपलोयणाए गच्छइ तह सथव कुणई ॥३॥ अवसन्न -सामाचार्यासेवने अवसन्नवदवसन्न , ओसन्नो ऽवि य दुविहो सव्वे देसे य तत्थ सव्वमि । उउबद्धपीढ फलगो ठवियगभोइ य णायव्वो ॥ १ ॥' देशावसन्नस्तु- 'आवस्सगमज्झाए पडिलेहणझाणभिक्खऽभत्तट्ठे । आगमणे णिग्गमणे ठाणे य णिसीयणतुयट्टे ॥ १ ॥ आवस्स याइयाइ ण कर, करेइ अहवावि हीणमहियाइ । गुरुवय- ण बलाइ तहा भणिओ एसो य ओसन्नो ॥२॥ गोणो जहा वलतो भजइ समिल तु सोऽवि एमेव । गुरुवयण अकरेंतो बलाइ कुणई य उस्सण्णो ॥३॥ 'भवति कुशीलः'

---

१ स पार्श्वस्थो द्विविध —सर्वस्मिन् देशे च भवति ज्ञातव्य । सर्वस्मिन् ज्ञानदर्शनचरणाना यस्तु पार्श्वे ।१॥ देशे च पार्श्वस्थ शय्यातराभ्याहृते राजपिण्डं वा । नित्य चाग्रपिण्ड भुनक्ति निष्कारणेन च ॥२॥ कुलनिश्रया विहरति स्थापनाकुलानि चा कारण विशति । सखडीप्रलोकनया गच्छति तथा सस्तवं करो ति ॥३॥ अवसन्नोऽपि च द्विविध सर्वस्मिन् देश च तत्र सर्व स्मिन् । ऋतुबद्धपीठफलक स्थापितभोजी च ज्ञातव्य ॥१॥ आ वश्यकस्वाध्याययो प्रतिलेखनाया ध्याने भिक्षायामभक्तार्थे । आगमने निर्गमन स्थाने च निषीदन त्वग्वर्तने ॥१॥ आवश्य कादीनि न करोति अथवाऽपि करोति हीनाधिकानि (वा) । गुरुव चनबलात्तथा भणित एष चावसन्न ॥२॥ गौर्यथा वलन् भनक्ति समि ला तु साऽप्येवमेव । गुरुवचनमकुर्वन् बलात् करोति चावसन्न ।३॥

कुत्सित शीलमस्येति कुशील',–'तिविहो होइ कुसीलो णाणे तह दसणे चरित्ते य । एसो अवदणिज्जो पन्नत्तो वी यरागेहिं ॥१॥ णाणे णाणायार जो उ विराहेइ कालमाईयं । दसणे दसणायार चरणकुसीलो इमो होइ ॥ २ ॥ कोउय भूईकम्मे पसिणापसिणे णिमित्तमाजीवे । कक्ककुरुए य लक्खण उवजीवइ विज्जमताई ॥३॥ सोभग्गाइ णिमित्त परेसि ण्हवणाइ कोउय भणिय । जरियाइ भूइदाण भूईकम्मं विणिद्दिट्ठ ॥४॥ सुविणयविज्जाकहिय आइग्व-णिघटियाइकहिय वा । ज सासइ अन्नेसिं पसिणापसिण हवइ एय ॥५॥ तीयाइभावकहण होइ णिमित्त इम तु आ जीव । जाइकुलसिप्पकम्मे तवगणसुत्ताइ सत्तविह ॥६॥ कक्ककुरुगा य माया णियडीए ज भणति त भणिय । थीलक्खणाइ लक्खण विज्जामताइया पयडा ॥ ७ ॥ ' ' तथैव समक्त ' इति यथा पार्श्वस्थादयोऽवन्द्यास्तथाऽयमपि सम क्तवत् ससक्त, त पार्श्वस्थादिक तपस्विनं वाऽऽसाद्य

१ त्रिविधो भवति कुशीलो ज्ञाने तथा दर्शने चारित्रे च । एषोऽवन्दनीय प्रज्ञप्तो वीतरागै ॥ १ ॥ ज्ञाने ज्ञानाचार यस्तु विराधयति कालादिकम्। दशने दर्शनाचारं चरणकुशीलो ऽय भवति ॥२॥ कौतुक भूतिकर्म प्रश्नाप्रश्न निमित्तमाजीवम् । कल्ककुहुकश्च लक्षण उपजीवति विद्यामन्त्रादीन् ॥३॥ सौभाग्या दिनिमित्त परेषा स्नपनादि कौतुक भणितम् । ज्वरितादये भूतिदानं भूतिकर्म विनिर्दिष्टम् ॥४। स्वप्नविद्याकथितमाङ्खिनी घण्टिकादिकथित वा । यत शास्ति अ येभ्य प्रश्नाप्रश्न भवन्ये तत ।५॥ अतीतादिभावकथन भवति निमित्तमिद त्वाजीवनम् । जातिकुलशिल्पकर्माणि तपोगणसूत्राणि सप्तविधम् ॥६॥ कल्कक हुका च माया निकृत्या यद्भणन्ति तद्भणितम् । स्त्रीलक्षणादि ल क्षण विद्यामन्त्रादिका प्रकटा ॥७॥

सन्निहितदोषगुण इत्यर्थ, आह च-"ससत्तो य इदाणीं सो पुण गोभत्तलदए चेव । उचिट्ठमणुच्चिट्ठं जं किंची छुब्भई सव्वं ॥१॥ एमेव य मूलुत्तरदोसा य गुणा य जत्तिया केइ। ते तम्मिवि सन्निहिया ससत्तो भण्णई तम्हा ॥२॥ राय विदूसगमाई अहवावि णडो जहा उ बहुरूवो । अहवा वि मेलगो जो हलिद्दरागाइ बहुवण्णो ॥३॥ एमेव जारिसेण सुद्धमसुद्धेण वाऽवि संमिलइ । तारिसओ चिय होति ससत्तो भण्णई तम्हा ॥४॥ सो दुविकप्पो भणिओ जिणेहिं जियरागदोसमोहेहिं । एगो उ संकिलिट्ठो असंकिलिट्ठो तहा अण्णो ॥५॥ पंचासवप्पवत्तो जो खलु तिहिं गारवेहिं पडिबद्धो । इत्थिगिहिसंकिलिट्ठो ससत्तो संकिलिट्ठो उ ॥६॥ पासत्थाईएसु संविग्गेसु च जत्थ मिलती उ। तहि तारिसओ भवइ पियधम्मो अहव इयरो उ ॥७॥ एसोऽसंक्लिष्ट, 'यथाछन्दोऽपि च' यथाछन्द -यथेच्छयैवागमनिरपेक्षं प्रवर्तते य स यथाछन्दोऽभिधीयते, उक्तं च-"उस्सुत्तमायरंतो उस्सुत्तं चेव पन्नवेमाणो । एसो उ अहाछंदो

१ ससक्तश्चेदानीं स पुनर्गोभक्तलन्दके चैव । उच्छिष्टमनुच्छिष्टं यत्किञ्चित् क्षिप्यते सर्वम् ॥ १ ॥ एवमेव च मूलोत्तरदोषाश्च गुणाश्च यावन्तः केचित् । ते तस्मिन् सन्निहिता ससक्तो भण्यते तस्मात् ॥२॥ राजविदूषकादयोऽथवाऽपि नटो यथा तु बहुरूपः । अथवाऽपि मेलको यो हरिद्रारागादि बहुवर्णः ॥३॥ एवमेव यादृशेन शुद्धेनाशुद्धेन वाऽपि संवसति । तादृश एव भवति ससक्तो भण्यते तस्मात् ॥४॥ स द्विविकल्पो भणितो जिनैर्जितरागद्वेषमोहैः । एकस्तु संक्लिष्टोऽसंक्लिष्टस्तथाऽन्यः ॥५॥ पञ्चाश्रवप्रवृत्तो यः खलु त्रिभिर्गौरवैः प्रतिबद्धः । स्त्रीगृहिभिः संक्लिष्टः ससक्तः संक्लिष्टः स तु ॥६॥ पार्श्वस्थादिकेषु संविग्नेषु च यत्र मिलति तु । तत्र तादृशो भवति प्रियधर्मा अथवा इतरस्तु ॥७॥ उत्सूत्रमाचरन् उत्सूत्रमेव

तत्रैव—

असुइ ठाणे पडिआ चपकमाला न कीरइ सीसे।
पासत्थाइठाणेसु वट्टमाणा तह अपुज्जा ॥२॥

अत्रोत्तरं—श्रीउपदेशमालाया।

पासत्थो१सन्न२कुसील३नीअ४ससत्तजण५महाछंद ६।
नाऊण त सुविहिया सव्वपयत्तेण वज्जति ॥१॥

ननु साम्प्रतीना साधवः किं भवता पार्श्वस्था उच्यन्ते, अवसन्ना वा किं वा कुशीला, उत ससक्ता यद्वा यथाच्छन्दा, तत्र यदि पार्श्वस्थास्तदा सर्वतो देशतो वा, न तावत्सर्वत. तल्लक्षण हि श्रीआवश्यके एव—

"सो पासत्थो दुविहो सव्वे देसे अ होइ नायव्वो।
सव्वमि नाणदसण--चरणाण जो उ पासम्मि ॥१॥"

वृद्धा अपि तल्लक्षणमेवमाहुः—

इच्छाछंदोत्ति एगट्ठा ॥१ उस्सुत्तमणुवदिट्ठं सच्छंदविगप्पियं अणणुवाइ। परतत्ति पवत्तिति णेओ इणमो अहाछंदो ॥२॥ सच्छंदमइविगप्पिय किंची सुहसायविगइपडिबद्धो। तिहिगारवेहि मज्जइ त जाणाही अहाछंदं ॥३॥" एते पार्श्वस्थादयोऽवन्दनीया, कुत्र ?-जिनमते, न तु लोक इति गाथार्थ ॥

प्रज्ञापयन्। एष तु यथाच्छन्द इच्छाछन्द इति एकार्थौ ॥ १ ॥ उत्सूत्रमनुपदिष्ट स्वच्छन्दविकल्पितमननुपाति। परतप्ति प्रवर्त्तयति ज्ञेयोऽय यथाच्छन्द ॥२॥ स्वच्छन्दमतिविकल्पित किञ्चित्सुखसातविकृतिप्रतिबद्ध । त्रिभिर्गौरवैर्माद्यति त जानीहि यथाच्छन्दम् ॥ ३ ॥

"सनिहिमाहाकम्म जलफलकुसुमाइ सव्वसच्चित्त ।
निच्चदुत्तिवार भोअण-विगइलवगाइ तवोल ॥१॥
वत्थ दुप्पडिलेहिय- मपमाणसकन्निय दुकूलाइ ।
सिज्जोवाणहवाहण--आऊहतवाइपत्ताइ ॥२॥
सिरतुड खुरमुड रयहरमुहपत्तिधारण कज्जे ।
एगागित्तभमण सच्छद चिट्ठिअ गीअ ॥३॥
चेइयमठाइवास पूआरभाइ निच्चवासत्त ।
देवाइ दव्वभोग जिणहरसालाइकारवण ॥४॥
न्हाणुवट्टणभूस ववहार गथसगह कील ।
गामकुलाइममत्त थीनट्ट थीपसग च ॥
थीपरिग्गहो वात्ति" इति पाठ ॥५॥
निरयगइहेउजोइ--सनिमित्त तेगिच्छमतजोगाइ ।
मिच्छाइरायसेव नीयाणवि पावसाहिज्ज ॥६॥
सुविहियसाहुपउस तप्पासे धम्मकम्मपडिसेह ।
सासणपभावणाए मच्छरलउडाइकलिकरण ॥७॥
सीसोदराइफोडण--भट्टित्त लोहहेउ गिहिथुणण ।
जिणपडिमाकयविक्कय-उच्चाडणखुद्दकरणाइ ॥८॥
थीकरफास वभे सदेहकलत्तरेण धणदाण ।
वट्टडयसीसगहण नीयकुलस्सावि दव्वेण ॥९॥
सव्वावज्जपवत्तण-मुहुत्तदाणाइ सव्वलोयाण ।

सालाइ गिहि घरे वा खज्जग यागाइ करणाइ ॥१०॥
जक्खाइ गुत्तदेवय-पूत्रा पूआवणाइमिच्छत्त ।
सम्मत्ताइनिसेह तेसिं मुल्लेण वा दाण ॥११॥
इय वहुहा सावज्जं जिणपडिकुट्ठ च गरहिअ लोए ।
जे सेवति कुकम्म करिंति कारिंति निद्धम्मा ॥१२॥
इह परलोअहयाण सासणजसघाइण कुदिट्ठीण ।
कह जिणदसणमेसिं को वेसो किंच नमणाइ ॥१३॥
इत्यादि॥

न चैवंविधलक्षणा एव साम्प्रतिकसाधवः सर्वेऽपि, केषाचित्सम्प्रत्यपि सर्वशक्त्या यतिक्रियासु यतमानाना यतीना दर्शनात् । अथ देशत. पार्श्वस्थास्तर्हि वदन्तु तल्लक्षणम् । श्रीआवश्यके—

देसम्मि पासत्थो सिज्जायरभिहडरायपिंड च ।
नियय च अग्गपिंड भुजइ निक्कारणे चेव ॥१॥
कुलनिस्साए विहरइ ठवणकुलाणि अ अकारणे विसइ।
सखडिपलोअणाए गच्छइ तह सथव कुणइ ॥२॥

इति श्री आवश्यकोक्त प्रसिद्धमेव ।

ननु एतत्सर्वं समुदित तल्लक्षण पृथग् २ वा, नैतावत् पृथक् २,एव हि स्थूलभद्रादीनामपि कोशागृहस्थितौ च तुर्मासी यावत् तद्गृह एवाहारग्रहणेन शय्यातरपिण्ड दोषादेशपार्श्वस्थत्वप्रसङ्ग ।

यदुक्त- आवश्यकबृहद्वृत्तौ योगसंग्रहेषु—

'थूलभद्दसामी तत्थेव गणिआघरे भिक्ख गेण्हइ'
इति अथ समुदितमिति पक्षः, तर्हि साम्प्रतिकसाधुष्वपि
केषुचिच्छय्यातराभ्याहृतराजपिण्डग्रहणादिरूपसमुदित
तल्लक्षणस्याभावात् कथं देशपार्श्वस्थत्वम्?, अनया दि
शा अवसन्नादित्वमपि निषेध्यम्, किञ्च-सौम्य! किमेवं
मुधा सम्यक्कसिद्धान्तानभिज्ञोऽपि पार्श्वस्थत्वादिदोषारो
पेण साम्प्रतिकसाधून् दूषयसि?। यत श्रीनिशीथे—

सतगुणछायणा खलु परपरिवाओ अ होइ अलिय च।
धम्मे अ अरज्जमाणो साहुपउसे य ससारो ॥१॥

तत शृणु सम्यक् तत्त्व, मात्सर्यमपहाय, यदि मोक्षा
र्थ्यसि। शास्त्रे पुलाकादय पञ्च निर्ग्रन्थाउक्तास्तत्र बकुश
कुशीलौ सर्वतीर्थकराणा तीर्थ यावत् प्रवर्त्तेते। तल्लक्षण
चेदम्-श्रीभगवती २५ शतकषष्ठोद्देशकार्थसंग्रहिण्याम्।
श्री अभयदेवसूरिकृतपञ्चनिर्ग्रन्थसंग्रहिण्यां, तथाहि--

बउस सबलं कब्बुर-मेगट्ठ तमिह जस्स चारित्त।
अइयारपकभावा सो बउसो होइ निग्गथो ॥१॥
उवगरणसरीरेसु सदुहा दुविहो होइ पचविहो।
आभोग अणाभोगे अस्सवुडसवुडे सुहुमे ॥२॥

---

१ बकुश शबल कर्बुरमिति 'एकार्थं' एकाभिधेय तदिति तादृश यस्य चारित्रमतिचारपङ्कसद्भावात्। स बकुशो भवति निर्ग्रन्थः ॥ १ ॥

२ स बकुश उपकरण-शरीरभेदाद्द्वेधा। तत्र वस्त्रपात्राद्युपकर णविभूषानुवर्त्तनशील उपकरणबकुश। करचरणनखमुखा दिदेहावयवविभूषानुवर्त्तनशील शरीरबकुश। सद्विविधा

जा उवगरणे बउसो सो धुवइ अपाउसेवि वत्थाइ ।
इच्छइ य लण्हयाइ किंचि विभूसाइ भुंजइ य ॥३॥
तंहपत्तदडयाईघट्ठ मट्ठ सिणेहकयतेअ ।
धारेइ विभूसाए बहु च पत्थेइ उवगरण ॥४॥
देहवउसो अकज्जे करचणनहाइअ विभूसेइ ।
दुविहो वि इमो इड्ढिं इच्छइ परिवारपभिइय ॥५॥
पडिच्चतवाइकय जस च पत्थेइ तम्मि तुस्सई य ।
सुहसीलो नय वाढ जयइ अहोरत्तकिरियासु ॥६॥

ऽपि पञ्चधा तद्यथा—साधूनामकृत्यमेतदिति जानन् कुर्वन्नाभोगबकुशः १। अजानन् कुर्वन्ननाभोगबकुशः २। मूलगुणैरुत्तरगुणैश्च संवृतः कुर्वन् संवृतबकुशः ३। असंवृतः कुर्वन्नसंवृतबकुशः ४। नेत्रनासिकामुखादिमलापनयनं कुर्वन् सूक्ष्मो भवति, ५ ॥ २ ॥

१ उपकरणे यो बकुशो भवति, सोऽप्रावृष्यपि वस्त्राणि धावयति, इच्छति च 'श्लक्ष्णानि' सूक्ष्माणि वस्त्राणि किञ्चिद् 'विभूषायै' विभूषार्थं समुपभुङ्क्ते च ॥ ३ ॥

२ तथा पात्रदण्डकादि घृष्टं खरपाषाणादिना, मृष्टं श्लक्ष्णपाषाणादिना सुकुमारं कृतं, तथा स्नेहादिना कृततेजस्कं धारयति विभूषायै' विभूषार्थं बहु च प्रार्थयते उपकरणं ॥४॥

३ देहबकुशः 'अकार्ये' कार्याभावेऽशुचिलेपविशेषादि विना करचरणनखादिकं विभूषयति । उपकरणशरीरबकुशो द्विविधोऽप्ययं परिवारं प्रभृतिकामृद्धिं इच्छति ॥ ५ ॥

४ पाण्डित्यतपआदिकृतं यशश्च प्रार्थयते । 'तस्मिन्' यशसि जाते सति 'तुष्यति' हृष्यति । सुखशीलः न च बाढं यततेऽहोरात्रं 'क्रियासु' धर्मानुष्ठानेषु ॥ ६ ॥

'थूलभद्दसामी तत्थेव गणिआघरे भिक्ख गेण्हइ'
इति अथ समुदितमिति पक्षः, तर्हि साम्प्रतिकसाधुष्वपि
केषुचिच्छय्यातराभ्याहृतराजपिण्टग्रहणादिरूपसमुदित
तल्लक्षणस्याभावात् कथं देशपार्श्वस्थत्वम् ?, अनया दि
शा अवसन्नादित्वमपि निषेध्यम्, किञ्च–सौम्य! किमेव
मुधा सम्यक्सिद्धान्तानभिज्ञोऽपि पार्श्वस्थत्वादिदोषारो
पेण साम्प्रतिकसाधून् दूषयसि ?। यत. श्रीनिशीथे—

सतगुणछायणा खलु परपरिवाओ अ होइ अलिय च।
धम्मे अ अरज्जमाणो साहुपउसे य ससारो ॥१॥

तत श्रृणु सम्यक् तत्त्व, मा-सयममपहाय, यदि मोक्षा
र्थयसि। शास्त्रे पुलाकादय पञ्च निर्ग्रन्थाउक्तास्तत्र वकुश
कुशीलौ सर्वतीर्थंकराणा तीर्थं यावत् प्रवर्त्तते । तल्लक्षण
चेदम्-श्रीभगवती २५ शतकषष्ठोद्देशकार्थसग्रहिण्याम् ।
श्री अभयदेवसूरिकृतपञ्चनिर्ग्रन्थसग्रहिण्या, तथाहि--

वउस सबलं कब्बुर- मेगट्ठ तमिह जस्स चारित्त ।
अइयारपकभावा सो वउसो होइ निग्गथो ॥१॥
उवगरणसरीरेसु सदुहा दुविहो होइ पचविहो ।
आभोग अणाभोगे अस्सवुडसवुडे सुहुमे ॥२॥

१ वकुश शवल कर्बुरमिति 'एकार्थं' पदाभिधेय तदिति तादृश यस्य चारित्रमतिचारपङ्कसद्भावात् । स वकुशो भवति निर्ग्रन्थ ॥ १ ॥

२ स वकुश उपकरण-शरीरभेदाद्द्वेधा । तत्र वस्त्रपात्राद्युपकरणविभूषानुवर्त्तनशील उपकरणवकुश । करचरणनखमुखादिदेहावयवविभूषानुवर्त्तनशील शरीरवकुश । सद्विविधा

जो उवगरणे बउसो सो धुवइ अपाउसेवि वत्थाइ ।
इच्छइ य लण्हयाइ किंचि विभूसाइ भुंजइ य ॥३॥
तंहपत्तदंडयाईघट्ठं मट्ठं सिणेहकयतेअं ।
धारेइ विभूसाए बहु च पत्थेइ उवगरणं ॥४॥
देहेबउसो अकज्जे करचरणनहाइअं विभूसेइ ।
दुविहो वि इमो इड्ढिं इच्छइ परिवारपभिइयं ॥५॥
पंडिच्चतवाइकयं जसं च पत्थेइ तम्मि तुस्सई य ।
सुहसीलो नय बाढं जयइ अहोरत्तकिरियासु ॥६॥

ऽपि पञ्चधा तद्यथा—साधूनामकृत्यमेतदिति जानन् कुर्व-
न्नाभोगबकुश १ । अजानन् कुर्वन्ननाभोगबकुश २ । मूल
गुणैरुत्तरगुणैश्च संवृत कुर्वन् संवृतबकुश ३ । असंवृत
कुर्वन्नसंवृतबकुश ४ । नेत्रनासिकामुखादिमलापनयनं कुर्वन्
सूक्ष्मो भवति, ५ ॥ २ ॥

१ उपकरणे यो बकुशो भवति, सोऽप्रावृष्यपि वस्त्राणि धावय-
ति, इच्छति च 'श्लक्ष्णानि' सूक्ष्माणि वस्त्राणि किञ्चिद्
'विभूषायै' विभूषार्थं समुपभुङ्क्ते च ॥ ३ ॥

२ तथा पात्रदण्डकादि घृष्टं खरपाषाणादिना, मृष्टं श्लक्ष्णपा-
षाणादिना सुकुमालं कृतं, तथा स्नेहादिना कृततेजस्कं
धारयति विभूषायै' विभूषार्थं बहु च प्रार्थयते उपकरणं ॥४॥

३ देहबकुश 'अकार्ये' कार्याभावेऽशुचित्वेऽपि विकारादि विना
करचरणनखादिकं विभूषयति । उपकरणशरीरबकुशो द्वि-
विधोऽप्ययं परिवार प्रभृतिकामृद्धिं इच्छति ॥ ५ ॥

४ पाण्डित्य तपआदिकृतं यशश्च 'प्रार्थयते । 'तस्मिन् यशसि
जाते सति 'तुष्यति' हृष्यति । सुखशील न च बाढं यत
तऽहोरात्र 'क्रियासु' धर्मानुष्ठानेषु ॥ ६ ॥

[1]परिवारो य असजम अविवित्तो होइ किंचि एयरस ।
घसिअपाओ तिल्लाइ मसिणिओ कत्तरि य केसो ॥७॥
[2]तह देससव्वछेआ-रिएहिं सवलेहिं संजुओ वउसो ।
मोहक्खयट्ठमब्भुट्ठिओ अ सुत्तंमि भणिओ य ॥८॥
[3]उवगरणदेहचुक्खा रिद्धी जसगारवासिआ निच्च ।
बहुसवलछेअजुत्ता निग्गंथा बाउसा भणिया ॥९॥
[4]आभोगे जाणतो करेइ दोस अजाणमणभोगे ।
मूलुत्तरेहिं संवुड-विवरीय असंवुडो होइ ॥१०॥
[5]अच्छि मुहमज्जमाणो होइ अहासुहमओ तहा वउसो
सील चरणं त जस्स कुच्छिअ सो इह कुसीलो ॥११॥

---

१ एतस्य परिवार असंयम असंयमवान् अविविक्त घृष्ट पादादिस्नेहादपूर्वभूत 'घसिअपाओ' इति घर्षितपाद तैलादिना मसृणित कर्त्तितकेश ॥ ७ ॥

२ तथा देशसर्वछेदार्हैः शबलचारित्रैः संयुतो बकुशो मोहक्षयार्थमभ्युत्थितः सूत्रे भणितं च ॥ ८ ॥

३ उपकरणदेहचुक्षा ऋद्धियशः सातागारवाश्रिता अविविक्तपरिवाराश्छेदयोग्यशबलचारित्रयुक्ता निर्ग्रन्था बकुशा भणिता ॥ ९ ॥

४ साधूनामकृत्यमेतदिति जानन् कुर्वन्नाभोगबकुशः १ । अजानन् कुर्वन्ननाभोगबकुशः २ । मूलोत्तरगुणैर्युक्तः लोकेऽविज्ञातदोषः संवृतबकुशः ३ । विपरीतो लोके प्रकटदोषोऽसंवृतबकुशः ४ ॥ १० ॥

५ अक्षिमुखादिमार्जयन् नैशमलाद्यपनयन् यथासूक्ष्मबकुशः ५। शीलं चरणं तदस्य कुत्सितं स इह कुशीलः ॥ ११ ॥

[1]पडिसेवणाकसाए दुहा कुसीलो दुहा वि पचविहो ।
नाणे दसणचरणे तवे अहसुहुमए चेव ॥१२॥
[2]इह नाणाइकुसीलो उवजीव होइ नाणपभिईए ।
अह सुहुमो पुण तस्स एस तवस्सि त्ति ससाए ॥१३॥
[3]जो नाणदसणतवे अणुजुजइ कोहमाणमायाहिं ।
सो नाणाइकुसीलो कसायओ होइ नायव्वो ॥१४॥
[4]चॅारित्तम्मि कुसीलो कसायओ जो पयच्छई साव ।
मणसा कोहाईए निसेवय हो अहा सुहुमो ॥१५॥
[5]अॅहवा वि कसाएहिं नाणाईण विराहओ जो य ।
सो नाणाइकुसीलो नेओ वक्खाणभेएण ॥१६॥
[6]मूॅलुत्तरगुणविसया पडिसेवासेवए पुलाए अ ।
उत्तरगुणेसु वउसो सेसा पडिसेवणारहिआ ॥१७॥"

---

१ स कुशीलो विपरीताऽऽराधना प्रतिसेवना तया कुशील
१ कषायै सज्वलनोदयादिरूपै कुशील कषायकुशील २ ॥१२॥
२ द्विधापि पञ्चधा ज्ञान दर्शन चारित्र तपो विषयो यथासूक्ष्माश्च॥
३ इह ज्ञानादिकुशीलो ज्ञानदर्शनचारित्रतपास्युपजीवस्तत्तत्प्रति सेवना कुशील । एष तु तपस्वीत्यादिप्रशमया यस्तुष्यति स यथासूक्ष्म प्रतिसेवना कुशील ॥ १४ ॥
४ तथा ज्ञानदर्शनतपासि य सज्वलनकषायोदययुक्त स्वस्व-विषये व्यापारयति स तत्कषायकुशीलो ज्ञातव्य ॥१५॥
५ चारित्रकुशील स य कषायाविष्ट शाप प्रयच्छति । मनसा क्रोधादीन्निषेवन यथासूक्ष्मकषायकुशील ॥ १६ ॥
६ मूलगुणा प्राणातिपातविरमणादय, दशविध प्रत्याख्याना दयस्तूत्तरगुणा तद्विषया प्रतिसेवा मूलोत्तरगुणप्रतिसेवा तस्या आसेवक पुलाक प्रतिसेवा कुशीलश्च । बकुश उत्तरगुणप्रतिसेवक । शेषाः प्रतिसेवनारहिता ॥ १७ ॥

अत्र मूलगुणोत्तरगुणविषया विराधना पुलाके, प्रति सेवना कुशीले च, उत्तरगुणविषया च बकुशे, शेषा प्रतिसेवना रहिता, इति श्रीउत्तराध्ययनबृहद्वृत्तावपि षष्ठाध्ययनेऽयमर्थं सविस्तरमुक्तोऽस्ति। तथा तत्रैव बकुशो द्विविध, उपकरण बकुश शरीरबकुशश्च तत्रोपकरणाभिष्वक्तचित्तो विविधविचित्रमहाधनोपकरणपरिग्रहयुक्त., विशेषयुक्तोपकरणकाङ्क्षायुक्तो नित्य तत्प्रतिकारसेवी भिक्षुरुपकरणबकुशो भवति।

शरीराभिष्वक्तचित्तो करचरणनखमुखादिदेहावयवविभूषानुवर्त्तनशील शरीरबकुश। प्रतिसेवना कुशीलो मूलगुणान् विराधयन् उत्तरगुणेषु काश्चिद्विराधना प्रतिसेवन्ते। भगवतीसूत्रे तु,

वकुसेणं पुच्छा? "जाव णो मूलगुणपडिसेवए होज्जा"
' पडिसेवणा कुसीलो जहा पुलाए '

अत्र च यत्पुलाकादीना मूलोत्तरगुणविराधकत्वेऽपि निर्ग्रन्थत्वमुक्त, तज्जघन्यजघन्यतरोत्कृष्टोत्कृष्टतरादिभेदतः सयमस्थानानामसङ्ख्यतया तदात्मकतया च चारित्रपरिणतेरिति भावनीयम्, इति श्री उत्तराध्ययनबृहद्वृत्तौ तस्मादल पार्श्वस्थादिलक्षणगवेषणक्लेशेन, किन्तु कालोचितयतनया यतमाना साधवो वकुशकुशीलत्व न व्यभिचरन्तीति वन्द्या एव। यदुक्त श्रीजिनवल्लभसूरिभिर्द्वादशकुलकया-

कालाइदोसओ जइवि कह वि दीसति तारिसा न जई
सव्वत्थ तह वि नत्थित्ति नेव कुज्जा अणासास॥१॥यत -

कुग्गह कलकरहिआ जहसत्ति जहागम च जयमाणा ।
जेण विसुद्धचरित्तत्ति वुत्तमरिहतसमयम्मि ॥२॥

सम्मत्तनाणचरणा-नुवाइ आणाणुग च ज जत्थ ।
जाणिज्जा गुण त तत्थ पूअए परमभत्तीए ॥३॥ इति

व्यवहारप्रथमोद्देशकेऽपि--

चोअग छक्कायाण तु सजमे जोणुधावए ताव (जाव)।
मूलगुणउत्तरगुणो दोण्णिवि अणुधावए (ताव) ॥२॥

अत्र वृत्ति -हे नोदक ! यावत्पड्जीवनिकायेषु सयमः प्रयत्नेन वर्त्तते । तावन्मूलगुणाउत्तरगुणाश्च द्वयेऽप्येतेऽनुधावन्ति वर्त्तन्ते इति । न च पार्श्वस्थादीनामपि सर्वथा अवन्द्यत्वम । आगमे तु--

कारणे जाते प्रकटप्रतिसेविनामपि वन्द्यत्वाभिधानात्।

तदुक्तमावश्यके--

[1]मुक्कधुरा सपागड--सेवी चरणकरणपब्भट्ठे ।

---

१ व्याख्या--धू सयमधू परिगृह्यते मुक्ता-परित्यक्ता धूर्येनेति समास सम्प्रकट--प्रवचनोपघातनिरपेक्षमेव मूलोत्तरगुणजाल सेवितु शीलमस्येति सम्प्रकटसेवी चेति विग्रह , तथा चर्यत इति चरणं व्रतादिलक्षण क्रियत इति । करण पिण्डविशुद्ध्यादिलक्षणं चरणकरणाभ्या प्रकर्षेण भ्रष्ट अपेतश्चरणकरणप्रभ्रष्ट, मुक्तधू स म्प्रकटसेवी चासौ चरणकरणप्रभ्रष्टश्चेति समासस्तस्मिन, प्राकृत शैल्या अकारेकारयोर्दीर्घत्वम, ॥

लिंगावसेसमित्ते ज कीरइ न पुणो वुच्छ ॥१॥
वायाइ नमुक्कारो हत्थुस्सेहो अ सीसनमण च ।
सपुच्छणऽच्छण छोभवदण वदण वावि ॥२॥
एआइ अकुव्वतो जहारिह अरिहदेसिए मग्गे ।
न भवइ पवयणभत्ती अभत्तिमताइआ दोसा ॥३॥

---

१ इत्थम्भूत लिङ्गावशेषमात्रे केवलद्रव्यलिङ्गयुक्ते य क्रियते किमपि तत्पुनर्वक्ष्ये पुन शब्दो विशेषणार्थ, कि विशेषयति ?—कारणापेक्षं कारणमाश्रित्य यत्क्रियते तद्वक्ष्ये—अभिधास्ये, कारणाभावपक्षे तु प्रतिषेध कृत एव विशेषणसाफल्य तु मुक्तधुरपि यदाचित्सम्प्रकटसेवी न भवत्यपि अतस्तद्ग्रहण सम्यक्त्वसेवी चरणकरणप्रभ्रष्ट एवेति स्वरूपश्रय नमिति गाथार्थं

२ व्याख्या 'वायाए त्ति निगमभूम्यादौ दृष्टस्य वाचाभिलाप क्रियते हे देवदत्त ! कीदृशस्त्वमित्यादिरूपण, गुरुतर पु ष्टकार्यापेक्ष वा तस्यव नमोक्कार त्ति नमस्कार क्रियत—हे दे वदत्त ! नमस्ते एव सवशेषतरविशेषकरणे पुरुषज्ञायभेद प्राक् नोपचारानुवृत्तिश्च द्रष्टव्या हत्थुसहो य त्ति आभ्यापनमस्कार गभ हस्तोच्छ्रयश्च क्रियते, सीसनमण च शिरसा उत्तमाङ्गेन नमन शिरोनमन च क्रियते, तथा 'संपुच्छनं' कुशल भवत इ यादि, अनुस्वारलोपोऽत्र द्रष्टव्य 'अच्छण ति त-[दुपमालस्न] स्तन्निधावासन कञ्चित्कालमिति एष तावद्व'हर्ष'ष्टस्य वि धि, कारणविशेषत पु स्तत्प्रतिश्रयमपि गम्यते तथाप्येव एव विधि नवर 'छोभवदणं' ति आरभट्या छोभवन्दन क्रि यते वदण वाऽवि परिशुद्धं वा वन्दनमिति गाथार्थं

३ व्याख्या—एतानि'वाङ्नमस्कारादीनि यथायोत्कटनयाऽकुर्व स अनुस्वारोऽत्रालाक्षणिक 'यथार्ह' यथायोगमर्हद्दर्शिते मार्गे न भवति प्रवचनभक्ति तत किमित्यत आह—अभक्तिमनाद आ दोषा प्राकृतशैल्याऽभक्त्याद्या दृषा आदिशब्दात् स्वार्थ भ्रशकर्मबन्धनादय इति गाथार्थं ॥

नन्वेतत्साधूनाश्रित्य, नतु श्राद्धान् । नैव । यतः—
श्राद्धजीतकल्पे,

उप्पन्नकारणम्मी वंदणाय जो न कुज्ज दुविहपि ।
पासत्थाईयाण उग्घाया तस्स चत्तारि ॥ ४ ॥

इति श्राद्धजीतकल्पे श्राद्धानाश्रित्य भणनात् । ननु किं नाम कारणेन श्राद्धोऽपि पार्श्वस्थादीन् वन्दते । उच्यते ज्ञानादिग्रहणरूपग्रहणशिक्षाऽऽवश्यकविध्यादिशिक्षणरूपाऽऽसेवनाशिक्षे कारणतयोक्ते एवागमे-यदुक्त श्रीव्यवहारे प्रथमोद्देशकान्ते—

चोयइ से परिवार अकरेमाणे भणेइ वा सड्ढे ।
अव्वुच्छित्तिकरस्स उ सुअभत्तीए कुणह पूत्र ॥१॥

इत्यादि एतद्व्याख्या-प्रथमत 'से' तस्यालोचनार्हस्य परिवार वैयावृत्त्यादिकमकुर्वन्त चोदयति शिक्षयति । तथा ग्रहणासेवनानिष्णात एष तत एतदस्य विनयवैयावृत्त्यादिक क्रियमाण महानिर्जराहेतुरिति । एवमपि शिक्ष्यमाणो यदि न करोति।ततस्तस्मिन्नकुर्वाणे स्वयमहारादीनुत्पादयति ।अथ स्वय शुद्ध प्रायोग्यमाहारादिकं न लभते । तत' श्राद्धान् भणति ज्ञापयति प्रज्ञाप्य च तेभ्योऽकल्पिकमपि यतनया सम्पादयति । न च वाच्य तस्यैव कुकुर्वत कथ न दोषो, यत आह-'अव्वोच्छित्ती'त्यादि अव्यवच्छित्तिकरणस्य पार्श्वस्थादे श्रुतभक्त्या हेतुभूतयाऽकल्पिकस्याप्याहारादे श्रुतभक्त्या पूजा कुरुत यूयं । न च तत्र दोष एवमत्रापि । इयमत्र भावना यथा कारणे पार्श्वस्थादीना समीपे सूत्रमर्थं च गृह्णानोऽकल्पिकमा-

हारादिक यतनया तदर्थं प्रतिसेवमान शुद्धा, प्रह पाशिक्षाया. क्रियमाणत्वादेवमालोचनार्हस्यापि निमित्त प्रतिसेवमान' शुद्ध एव, आसेवनाशिक्षायास्तत्समीपे क्रियमाणत्वादिति । उपदेशमालायामपि —

"[1]सुगईमग्गपईव नाणदिंतस्स हुज्ज किमदेय ।
जह त पुलिंदएण दिन्न सिवगस्स नियगच्छि॥१॥इति।

ननु तत्रैव ।
आलावो सवासो विसभो सथवा पसगो अ ।
हीणायारेहिं सम, सव्वजिणिंदेहिं पडिकुट्ठा ॥१॥
इति वचनात् सह आलापाद्यपि त्यज्यते,
तेषां पार्श्वे ज्ञानग्रहणादि कथं युज्यते।

उच्यते यदि तेभ्योऽधिकगुणा साधवो लभ्यन्ते ? तदा न युज्यते एव तेषां पार्श्वं ज्ञानग्रहणादि । तदभावे तु तेषामपि पार्श्वं ज्ञानग्रहणादि युक्तमेवागमप्रामाण्यात् । यदि हि यदर्थं द्वादशवर्षं सुगुरुन् प्रतीक्षते साऽपि आलोचना गुर्वभावे पार्श्वस्थादिपार्श्वे ग्राह्यतयोक्ता जीतकल्पे —

आयरिआइ सगच्छे सभोइअ इअरगीअपासत्थे ।
सारुवी पच्छाकड देवयपडिमा अरिह सिद्धे ॥१॥

---

[1] व्याख्या — 'सुगइ इति ' सद्गतिमोक्षरूपा तस्या मार्ग पथ्यास्तत्प्रकाशनेन प्रदीप दीपसदृशमेतादृश ज्ञान, ज्ञायते परिच्छिद्यते वस्त्वनेनेति ज्ञान, अत्र श्रुतज्ञान ग्राह्यम् तद्ददता ज्ञानमददता 'हुज्ज इति' भवेत्किमदेयम् ? यतावता यदि ज्ञानदाता जीवित मार्गयति तदा सुशिष्येण तदपि देयमित्यर्थ ,

इत्यादिजीतकल्पवचनप्रामाण्यात । तदानीं प्रतिदिनविधेयाऽऽवश्यकविधिशिक्षणादि तत्पार्श्वे सुतरां कार्यं, शुद्धचारित्रभावे ।

नन्वेव पश्चात्कृतादीनामपि वन्धत्व स्यात्तेपामपि आलोचनाधिकारेऽधिकृतत्वात, नैव, तेपां साधुवेपाभावात। साधुवेपाभावे हि प्रत्येकवुद्धादिरपि न वन्धः स्यात्कि पुनरितर. ।

यदुक्त श्रीपञ्चकल्पे—

एव तु दव्वलिंग भावे समणत्तण तु णायव्व ।
को उ गुणो दव्वलिंगे भण्णति इणमो सुणसु वोच्छ॥
सक्कारवदणनमसणा य पूआ य लिंग कप्पम्मि ।
पत्तेयबुद्धमादी लिंगे छउमत्थतो गहण ॥२॥
वत्थासणसक्कारो वदण अव्भुट्ठाणं तु णायव्व ।
पणिवाओ उ णमंसण–सतगुणकित्तणा पूआ ॥३॥
दट्ठूण दव्वलिंग कुव्वते ताणि इदमाइवि ।
लिंगम्मि अविज्जते न नजती एस विरओत्ति ॥४॥
पत्तेयवुद्धो जाव उ गिहिलिंगी अहव अन्नलिंगी उ ।
देवावि ता ण पूयति मा पुज्ज होहिति कुलिंग ॥५॥

ननु महानिशीथे–

जीवे सम्मग्गमोइन्ने घोरवीरतव चरे ।
अचयतो इमे पच सव्व कुज्जा निरत्थय ॥१॥

कुसीलोसन्नपासत्थे सच्छदे सवले तहा ।
दिठ्ठीए वि इमे पच -गोयमा ! न निरिक्खए ॥२॥
तथा -पचे एसु महापावे जो न वजिज्ज गोयमा ! ।
सलावाईहि कुसीलाई भमिही सो सुमई जहा॥३॥

इति श्रीमहानिशीथे तेषा दर्शनमात्रमपि निषिध्यते । तत्कथ तेषां पार्श्वे ज्ञानग्रहणादि युज्यते । सत्यं, तेषा दर्शनसूत्रसूत्राणामेव तत्रापि निषिद्ध नान्येषां । य

तस्तत्रैवाधिकारे अन्तरा एता गाथा सन्ति ॥
सव्वन्नुदेसिअ मग्ग सव्वदुक्खपणासणं ।
सायागारवगुरुए अन्नहा भणिउमुज्झए ॥१॥
पयमक्खरम्मि जो एग सव्वन्नूहिं पवेइअ ।
न रोइज्ज अन्नहा भासे मिच्छदिठ्ठी स निच्छिअ॥२॥
एव नाऊण ससग्गि दरिसणालावसथव ।
सवास च हिआकखी सव्वोवाएहिं वज्जए ॥३॥ इ०

किञ्च–श्रीमहानिशीथेऽतिपरिणामकानामपि परमसंवेगजनकतया भयवाक्यान्येव प्रायो दृश्यन्ते । यथा–गोयमा ! जे केई अणोवहाणेण सुअनाणंमहीअति ’

जाव समणुजाणति, तेण महापावकम्मे महती, सुपसत्थनाणस्सासायण कुव्वति । तथा–जेण केई न'इच्छिज्जा एअतण अविणउवहाणेण चेय ,पचमगलाइसुअनाणस्समहिज्जणे अज्झावेइ वा अ-

ज्झावयमाणस्स वा अणुन्न पयाइ । से णं न भवि-
ज्जा पियधम्मे दढधम्मे भत्तिजुए, हीलिज्जा सुत्त
अत्थ तदुभय, हीलिज्जा गुरु, आसाइज्जा अईआ-
णागयवट्टमाणतित्थयरे, आसाइज्जा आयरियउव-
ज्झायसाहुणो, जेणं आसाइज्जा सुअनाणमिति'
इत्यादि तत्रैव तृतीयाध्ययने । इति युष्माकमपि विनयो-
पधान-वहनादिविधिमविधाय पञ्चमङ्गलाद्यधीयानानां म-
हापापत्वेनातीतानागतवर्त्तमानतीर्थकराशातनाकारित्वेना
नन्तद्व्यमेव स्यादिति । यच्चिन्त्यते परस्मिन् तदायाति स्व
स्मिन्निति न्याय एवोपढौकते। कथञ्चैवं भक्तपरिज्ञायाम्-

अन्नाणी विहु गोवो आराहित्ता गओ नमुक्कारं ।
चपाएसिट्ठिसुओ सुदसणो विस्सुओ जाओ ॥१॥

इति । आवश्यके—

इह लोगम्मि तिदडी सा दिव्व माउगिंवणमेव ।
परलोइ चडपिंगल-हुडिअजक्खो य दिट्ठता ॥१॥

इत्यावश्यके चोक्तं कथं सङ्गच्छते । अनुपधानेनापि
नमस्कार पाठिनां सुगतिप्रतिपादनात् । किञ्च श्रीमहानि-
शीथे स्वल्पेऽपि प्रमादे साधोः कुशीलत्वोक्तेस्तस्य च तद-
दभिसन्धिनाऽचारित्रित्वात् सर्वागमोक्तं साधोः प्रमत्ता-
प्रमत्तरूपं गुणस्थानकद्वयं कथं सङ्गच्छते ? । यदि च कु
शीलादीनामेकान्तेनाचारित्रत्वं सम्मतं स्यात् , तदा त-
त्रैव महानिशीथे गणाधिपत्ययोग्यगुरुगुणानुक्त्वा,

"उड्ढ पुच्छा गोयमा ! तओ परेण उड्ढ हायमाणे कालसमए तत्थण जे केइ छक्कायसमारभविवज्जी, से ण धन्ने पुन्ने वदे पुज्जे नमसणिज्जे "

इति पञ्चमाध्ययने षट्कायसमारम्भविवर्जिनामपि कथं पूज्यत्वमवादि ! तथा श्रीपञ्चकल्पेऽपि—

दसण नाण चरित्त तव विणय जत्थ जत्तिअ पासे।
जिणपन्नत्त भत्तीइ पूअए त तहा पाय ॥१॥

अपि च-भवन्यमध्योक्तकुशीलस्य निर्ग्रन्थमध्योक्तकुशीलस्य च लक्षणे विचार्यमाणे एकत्वमेव दृश्यते। तथा हि-अवन्द्यकुशील' श्रीआवश्यके ज्ञानदर्शनचारित्राचारविराधकभेदात् त्रिविध उक्त । श्रीमहानिशीथे तु—

" अणेगहा कुसीले, त जहा-नाणकुसीले १ दसणकुसीले २ चारित्तकुसीले ३ तवकुसीले वीरियकुसीले इति "

निर्ग्रन्थमध्योक्तकुशीलश्च श्रीभगवत्या ज्ञान दर्शनचारित्रतपसा विराधको मनसा क्रोधाद्यासेवकश्च पञ्चधोक्त । एव च ज्ञानदर्शनचारित्राणि विराधयन् कुशील इत्युच्यते। इति तत्त्वतो द्वयोरपि लक्षणमेकमेव। श्रीमहानिशीथे च-

एव अट्ठरसण्ह सीलगसहस्साण जो जत्थ पए पमत्ते भविज्जा। से ण तेण पमायदोसे ण कुसीलेणो य।

इति सूक्ष्मविराधकस्याप्यवन्द्यकुशीलत्वेनोक्तेर्बकुशकुशीलाना निर्ग्रन्थानामपि श्रीभगवत्यामुत्तरगुणज्ञानादिविराधकत्वेनोक्ताना कथं नावन्द्यकुशीलत्वं, तेषां च तथात्वे शासनोच्छेद एव । यतः—

न विणा तित्थ निअठेहिं नातित्था य निअठया ।
छक्कायसजमो जाव ताव अणुसज्जणा दुण्ह ॥१॥
सव्वजिणाण निच्च वउसकुसीलेहिं वट्टए तित्थ ॥

इति .... ततः पार्श्वस्थादीनामेकान्तेनावन्द्यत्वाक्षराणि भयवाक्यतयैव स्वीकर्त्तव्यानि, नमस्कारोपधानवाक्यवत्, भयवाक्य च श्रुत्वा मन्दसंवेगोऽपि तीव्रश्रद्ध. स्यात् । एवं च—

पासत्थो ओसन्नो० ॥ १ ॥
कुसीलोसन्नपासत्थो सच्छदे सिढिले तहा ।
दिट्ठीए वि इमे पच गोयमा ! न निरिक्खए ॥२॥
असुइट्ठाणे अडिआ० ॥ ३ ॥ इत्यादि

वाक्यानि भयवाक्यत्वेन पार्श्वस्थत्वादिकारणशय्यातरपिण्डदानादित्याजनपराणि पार्श्वस्थादिसंसर्गनिषेधनपराणि च बोद्धव्यानि ।

नतु तेषा सर्वथा अवंद्यत्वख्यापनपराणि । यथा हि लोके दुर्विनीत पुत्रादिक प्रति एतस्य भोजनं न दातव्यमित्यादिवाक्यानि दुर्विनयशिक्षणपराणि नतु भोजननिषेधपराणि । यतः श्रीधर्मरत्नप्रकरणे—

विहि'उज्जम वण्णय भय उस्सग्ग ववायतदुभयगयाइं।
सुत्ताइं बहुविहाइं समए गंभीरभावाइं ॥ १ ॥

१टीका—विधिश्चोद्यमश्च वर्णकश्च भयं चोत्सर्गश्चापवादश्च तदुभयं चेति द्वन्द्वः,तस्य च स्वपरप्रधानत्वाद्गतानीति प्रत्येकमभिसम्बध्यते। सूत्राणि च विशेष्याणि। ततश्चैवं योज्यते कानिचिद्विधिगतानि सूत्राणि समये सन्ति। यथा—"सपत्ते भिक्खकालंमि असंभंतो अमुच्छिओ। इमेण कमजोएण भत्तपाणं गवेसए। १ " इत्यादीनि पिण्डग्रहणविधिज्ञापकानि। उद्यमसूत्राणि—"दुमपत्तए पंडुयए जहा निवडइ राइगणाण अच्चए। एवं मणुयाण जीवियं समयं गोयम ? मा पमायए॥ १ " इत्यादीनि। तथा—"धरइ उभओ कालंपि चेइयाइं थयथुईपरमो। जिणवरपडिमा घरधूयपुप्फगंधच्चणे जुत्तो ॥१॥" कालनिरूपणस्योद्यमहेतुत्वान्न पुनरन्यदाऽपि चैत्यवन्दनं न धर्मायेति। वणकसूत्राणि चरितानुवादरूपाणि। यथा—द्रौपद्या पूरुषपञ्चकस्य वरमालानिक्षेप, ज्ञाताधर्मकथाग्रन्थेषु नगरादिवर्णकरूपाणि च वणकसूत्राणि। भयसूत्राणि नारकादिदुःखदर्शकानि। उक्तं च—"नरएसु असुरूहिराइवण्णणं जं पसिद्धिमेत्तेण। भयहेउ इहर तेसिं वेउव्वियभावओ न तयं॥ १ ॥" अथवा दुःखविपाकेषु पापकारिणां चरितकथनानि भयसूत्राणि। तद्भयात्प्राणिनां पापनिवृत्तिसंभवात्। उत्सर्गसूत्राणि—"इच्चेसिं छण्हं जीवनिकायाणं नेव सयं दंडं समारंभेज्जा॥ " इत्यादिषड्जीवनिकायरक्षाविधायकानि। अपवादसूत्राणि प्रायश्छेदग्रन्थगम्यानि। यथा—"न यालभेज्जा निउणं सहायं गुणाहियं वा गुणओ समं वा। एक्कोवि पावाइं विवज्जयंतो विहरेज्ज कामेसु असज्ज

एसिं विसयविभाग अमुणतो नाणवरणकम्मुदया ।
मुज्झइ जीवो तत्तो सपरेसिमसग्गह जणइ ॥२॥

इति । किञ्च–यदि पार्श्वस्थादिसङ्गतिनिषेधकवाक्यानि, न भयवाक्यतया अङ्गी क्रियन्ते, किन्तु विधिवाक्यतयैव । तदानी श्रीआवश्यके श्रीसम्यक्त्वदंडके तदतीचारपञ्चके च परतीर्थिकाणामालापान्नदानप्रशंसादिवर्जनवत्पार्श्वस्थादीनामपि तद्वर्जनं कृतमभविष्यत् । चतुर्विधमिथ्यात्वे च लोकोत्तरं गुरुगत मिथ्यात्व, (लिंगधारिस्वरूप) तथाहि—

"[1]दगपाण पुप्फफल अणेसणिज्ज गिहत्थकिच्चाइ ।
अजया पडिसेवती जइ वेसविडवगा नवर ॥१॥"
[2]उसन्नया अबोही पवयण उब्भावणा य बोहिओ ।

माणो ॰ १ ॥ " इत्यादीन्यपि । तदुभयसूत्राणि येषूत्सर्गापवादौ युगपत्कथ्येते । यथा–"अट्टज्झाणाभावे सम्मं अहियासियव्वओ वाही । तब्भावम्मि उ विहिणा पडियारपवत्तणं नेय ॥१॥ " एवं 'सूत्राणि बहुविधानि' स्वसमयपरसमयनिश्चयव्यवहारज्ञानक्रियादिना नयमतप्रकाशकानि 'समये' सिद्धान्ते 'गम्भीरभावानि' महामतिगम्याभिप्रायाणि सन्तीति शेष ॥ १ ॥

१ व्या०—'दगपाण इति' दगपाण शब्देन सचित्तजलपान पुष्पं जात्यादीना, फलमाम्रादीना, 'अणेसणिज्ज इति' आधाकर्मादिदोषदुष्टमाहारादि, अयता असयता प्रतिसेवन्ते प्रतिकूलमाचरन्ति, नवर केवल ते वेषविडम्बका एव, न तु स्वल्पमपि परमार्थसाधका इत्यर्थ ॥

२ व्या० उसन्नया इति' एतादृशाना भ्रष्टाचाराणामवसन्नता पराभवो भवति, अबोधिर्धर्मप्राप्त्यभाव स्यात् । यत प्रवचनस्य,

ओसन्नो वि वर पिहु पवयण उब्भावणापरमो ॥२॥
गुणहीणो गुणरयणा–यरेसु जो कुणइ तुल्लमप्पाणं ।
सुतवस्सिणो अ हीलइ सम्मत्त कोमल तस्स ॥३॥
उसन्नस्स गिहिस्स व जिणपवयणतिव्वभावियमइस्स ।
कीरइ ज अणवज्ज दढसम्मत्तस्स वत्थासु ॥ ४ ॥
पासत्थोसन्नकुसील–नायससत्त जण महाछंद ।

---

१ शासनस्योद्भावनाया प्रभावनाया वर्द्धिताया सत्या वाधिरूप फलं भवति नतु प्रवचनहीलनाया कृतायामित्यर्थ। 'उसन्नोविति' अवसन्नोऽपि कर्मपारवश्येन शिथिलाचारोऽपि वरं श्रेष्ठ, यदि 'पिहुत्ति पृथुपृथुतर यथास्यात्तथा प्रवचनस्य शासनस्योद्भावना प्रभावना शोभेति यावत्, तस्या परम प्रधानो भवति, व्याख्या नादिना शासनप्रभावकोऽवसन्नोऽपि वरमित्यर्थ ॥

२ व्या० 'गुणहीणा इति' गुणैर्न चारित्रादिना हीन एतादृशो गुणरत्नाकरैर्गुणसमुद्रै साधुभि सार्धं य स्वकीयमात्मानं तुल्य करोति, वयमपि साधव इति मन्यते, तस्य पुरुषस्य सम्यक्त्व कोमलमसारमर्थात्म मिथ्यादृष्टिरित्यर्थ ॥

३ व्या० उसन्नस्सेति॰ अवसन्नस्य पार्श्वस्थादिकस्य वाऽथवा गृहस्थस्य कीदृशस्य ? जिनस्तीर्थकरस्तस्य प्रवचने सिद्धान्ते धर्मेण तीव्रभाविता मतिर्यस्य तस्य जिनधर्मरागरक्तस्यैतादृशस्या ऽवसन्नस्य श्रावकस्य वा यद्वैयावृत्यादि क्रियते, तत्सर्वमनवद्य निष्पाप निर्दूषणमिति यावत् कीदृशस्य ? दृढसम्यक्त्वस्य नि र्मलदर्शनस्य कदा वैयावृत्यादि करोति ? अवस्थासु क्षेत्रकाला द्यवस्थासु ॥

४ व्या० 'पासत्थो इति' पार्श्वे ज्ञानदर्शनचारित्राणा समीपं तिष्ठतीति पार्श्वस्थ अवसन्नश्चारित्रविषये शिथिलाचार कुशील नायशब्देन यो न भणनाद् ज्ञानविराधक, 'ससत्त जण इति

[1]नाऊण तं सुविहिया सव्वपयत्तेण वज्जंति ॥ ॥५॥
वीयालमेसणाओ न रक्खइ धाइसिज्जपिंड च ।
आहारेइ अभिक्खं विगइ उ सन्निहिं खाइ ॥१॥
सुरप्पमाणभोजी आहारेइ अभिक्खमाहार ।
नय मंडलीइ भुंजइ नय भिक्ख हिंडइ अलसो ॥२॥
कीवो नें कुणइ लोअ लज्जइ पडिमाइ जल्लमवणेइ ।
सोवाहणो अ हिंडइ बधइ कडिपट्टयमकज्जे ॥३॥

१संलग्ना, यो यत्र यादृशो मिलति,तत्र तत्सगत्या तादृशो भवति स संसक्त इत्युच्यते यथाछद स्वकीयमत्योत्सूत्रमरूपक , एतेषा स्वरूप ज्ञात्वा सुविहिता शोभनानुष्ठाना साधवस्त पार्श्वस्था दिकं सर्वप्रयत्नेन सर्वशक्त्या वर्जयन्ति तत्सङ्गति न कुर्वन्ति चारित्रविनाशकारित्वादित्यर्थं ॥

अथ पार्श्वस्थादीना लक्षणानि कथयति—

२ व्या० 'वायाल इति' द्विचत्वारिंशत्सख्याका एषणा इति आहारविषया गवेषणास्तान् न रक्षति न पालयति, आहारदो षान निवारयतीत्यर्थं , च पुनर्धात्रीपिण्ड न रक्षति, न निवार यति 'सिज्ज त्ति' शय्यातरपिण्ड गृण्हाति, अभीक्ष्णं पुन पुनर्वि कृतीर्दुग्धदधिप्रमुखा कारण विनाऽऽहारयति' 'सन्निहिं इति' रा- त्रावपथा रात्रिरक्षितं वस्तु खादति भक्षयतीत्येवशील ॥

३ व्या० सूर इति' सूर्यप्रमाण उदयादारभ्याऽस्त यावद्भुङ्क्ते इत्येवशील , अभीक्ष्णं निरन्तरमाहारमशनाद्याहरति भुङ्क्ते, न च साधुमण्डल्या भोजन करोति, एकाक्येव भोजनं करोति, न च भिक्षार्थं हिंडति भ्रमति, गोचर्या न गच्छति अलस सन् स्तो के एव गृहे बहुतर गृण्हातीत्यर्थ ॥

४ व्या० कीवो इति' क्लीब कातरत्वेन लोच केशोत्पाटनं न करोति, 'पडिमा इति' कायोत्सर्ग कुर्वन् लज्जते जल्ल शरीरमलं हस्तेनापनयति 'सोवाहणो अ इति' पादत्राणसहितो हिंडति बध्नाति कटिप्रदेशे पट्टक चोलपट्टक 'अकज्जे इति' कार्यं विना ॥

[1]गाम देस च कुल, ममाए पीढफलगपडिबद्धो ।
घरसरणेसु पवज्जइ विहरइ य सकिंचणो रित्तो ॥४॥

नेह दंतकेसरोमे जमेइ अत्थोलधोइणो अजओ ।
वाहेइ पलिअंक अइरेगप्पमाणमत्थुरइ ॥५॥

सोवेइ य सव्वराइं नीसट्ठमचेयणो न वा झरइ ।
न पमज्जंतो पविसइ निसिहियावस्सियं न करेइ ॥६॥

---

१ व्या० 'गामे इति' ग्रामे देशे अथ च कुले 'ममाए इति' ममतया विचरति एतानि मदीयानीति ममत्ववान् पीठफलकेषु प्रतिबद्धः वर्षाकालं विनापि शेषकाले तद्ग्रहणं कुर्वन् 'घरसरणेसु इति' गृहाणां पुनर्नवीनकरणे प्रसज्यति प्रसङ्गं करोति चिन्ताकारको भवतीत्यर्थः विहरति विहारं करोति 'सकिंचणो त्ति' सुवर्णादिद्रव्यसहितः सन् अहं रिक्तोऽस्मि, द्रव्यरहितो निर्ग्रन्थोऽस्मीति लोकानामग्रे कथयति ॥

२ व्या० 'नह इति' नखा दन्ता केशा मस्तकसम्बन्धिन रोमाणि शरीरसम्बन्धीनि च, एतेषां द्वन्द्व तानि 'जमे इति' भूषयति अत्थोलशब्देन बहुपानीयेन धावनं हस्तपादादीनां यस्यैतादृश 'अजओ त्ति' अयतनया युक्त 'वाहेइ त्ति' वाहयति गृहस्थवदुप भुङ्क्ते पल्यङ्कं मञ्चकमतिरेकप्रमाणं प्रमाणातिरिक्तं संस्तार कास्तरपट्टादिकमास्तरति सुखशय्यां करोतीत्यर्थः ॥५॥

३ व्या० 'सोवइय इति' स्वपिति शयनं करोति सर्वस्यां रात्रौ रात्रिप्रहरचतुष्केऽपीत्यर्थः निःसृष्टं निर्भरमचेतनश्चेतनारहितः काष्ठवत् शयनं करोतीत्यर्थः, 'न वा झरइ त्ति' रात्रौ गुणनादिकं स्वाध्यायं न करोति रात्रौ रजोहरणादिना भूमिमप्रमार्जयन्नुपाश्रये प्रविशति नैषेधिकीं सामाचारीं प्रवेशसमये, निर्गमनसमये वा आवश्यकीं न करोति ॥

[1]पायपहे न पमज्जइ जुगमायाए न सोहए इरियं ।
पुढवीदगअगणिमारुअ–वणस्सइतसेसु निरविक्खो ॥७॥
[2]सव्व थोव उवहिं न पेहए न य करेइ सज्झायं ।
सद्दकरो झझकरो लहुओ गणभेयतत्तिल्लो ॥८॥
[3]खित्ताईय भुंजइ कालाईयं तहेव अविदिन्नं ।
गिण्हइ अणुइयसूरे असणाई अहव उवगरणं ॥९॥
[4]ठवणाकुले न ठवेइ पासत्थेहिं च संगयं कुणइ ।
निच्चमवज्झाणरओ न य पेहपमज्जणासीलो ॥१०॥

---

१ व्या० पायपहे इति' पहेति पथि मार्गे व्रजन्, ग्रामसीम्नि प्रविशन् निस्सरन् वा न पादौ चरणौ प्रमार्जयति "युगमात्राया" युगप्रमाणाया भूमौ इर्यां न शोधयति, पृथ्वी शब्देन पृथ्वीकाय, दगशब्देनाप्काय अगणिशब्देन तेजस्काय मारुतो वायुकाय वनस्पतिकायत्रसकायश्च, एतेषु षट्सु जीवनिकायेषु निरपेक्षोऽपेक्षारहितो विराधयन्न शङ्कते इत्यर्थं ॥

२ व्या० सव्व इति' सर्वं स्तोकमप्युपधि मुखवस्त्रिकामात्रमपि न प्रेक्षते, न प्रतिलेखते, न च करोति स्वाध्याय वाचनादिक रात्रौ शयनानन्तर गाढ शब्द करोतीति, झझशब्देन कलहं करोतीति, लघुको ननु गम्भीरो न गुणयुक्त, गणस्य सघाटकस्य भेद भेदकरणे 'तत्तिल्लोत्ति तत्पर ॥

३ व्या० खित्ताईय इति' क्रोशद्वयादुपरिक्षेत्रादानीतमाहार य दाहरेत्तत्क्षेत्रातीत कालातीतमिति यदानीताहार प्रहरत्रयानन्तर भक्षयति,'अणुइय सूरे इति अनुद्गते सूर्यं गृण्हाति,सूर्योदयात्प्रथममाहार गृण्हाति, अशनादिक चतुर्विधमाहारं, अथवोपकरणं व स्त्रादि, एवविध पार्श्वस्थादि कथ्यते इत्यर्थ ॥

४ व्या० 'ठवणा इति स्थापनाकुलानि वृद्धग्लानादीनामतीव भक्तिकराणि तानि न स्थापयति न रक्षति, निष्कारणं तत्राहारार्थं गच्छतीत्यर्थं ,च पुन पार्श्वस्थैर्भ्रष्टाचारैः सार्द्ध संगं मैत्र्य करोति,

१रीयइ य दवदवाए मूढो परिभवइ तह य रायणिए ।
परपरिवाय गिण्हइ निट्ठुरभासी विगहसीलो ॥११॥
विज्जं मंत जोग तेगिच्छ कुणइ भूइकम्म च ।
अक्खरनिमित्तजीवी आरभपरिग्गहे रमइ ॥ १२ ॥
कज्जेण विणा उग्गह- मणुजाणावेइ दिवसओ सुअइ ।
अज्जियलाभ भुजइ इत्थिनिसिज्जासु अभिरमइ ॥१३

नित्य निरन्तरमपध्याने रतस्तत्पर न च प्रेक्ष्य चक्षुषा विलोकयवस्तुनो ग्रहणं प्रमार्जना रजोहरणादिकेन प्रमार्ज्य च स्तुनो भूमौ स्थापन, तच्छीलस्तदाचरणस्वभावो नेत्यर्थ ॥

व्या० 'रीयइ य इति' गच्छति दवदवाए इति' मन्थर मूल सन पराभवति तहय इति तथा 'रायणिएत्ति' ज्ञानादिगु णरत्नैरधिका वृद्धास्तान्, तै सह स्पर्द्धत इत्यर्थ, परेषा परि वादोऽवर्णवादस्त गृण्हाति निष्ठुर कठिन भाषत, इत्येवशील, विकथा राजकथाद्यास्तासा शील स्वभावो यस्य स ॥

व्या० विज्ज इति विद्या देवाधिष्ठिता मत्र देवाधिष्ठित योगमद्दृश्यीकरणादि 'तेगिच्छं इति, रोगप्रतिक्रिया करोति, च पुनर्भूतिकर्मेति रक्षाद्यभिमंत्र्य गृहस्थेभ्य समर्पयति अक्षरशब्देन लेखकानामक्षरविद्याप्रदानं, निमित्त शुभाशुभयोर्लग्नबलेन प्रका शन तेन जीवतीत्येवशील आरम्भ पृथिव्याद्युपमर्द परिग्रहो ऽधिकोपकरणरक्षणं तत्र रमते तत्रासक्त इत्यर्थं ॥

व्या० कज्जेण इति' कार्येण विना निरर्थकमित्यर्थ, अव ग्रहं स्थित्यर्थमनुज्ञापयति गृहस्थाना भूमिका ज्ञापयित्वा मुञ्चती त्यर्थ, दिवसे स्वपिति निद्रा करोति आर्यिकाया लाभं साध्वी लब्धमाहार भुनक्ति, स्त्रीणां निषद्या आसनानि, तत्राभिरमते स्त्रीणामुत्थानानन्तर तत्कालमेव तत्र तिष्ठतीत्यर्थ ॥

'उच्चारे पासवणे खेले सिंघाणए अणाउत्तो ।
संथारगणवहीणं पडिक्कमइ सवासपाउरणो ॥ १४ ॥
न करेइ पहे जइणं तलिआणं तह करेइ परिभोग ।
चरइ अणुवद्धवासो स पक्खपरपक्खओमाणो ॥१५॥
संजोअइ अ वहुअ इगालसाधूमग अणट्ठाए ।
भुञ्जइ रूववलट्ठा न धरेइ अ पायपुछणय ॥१६॥
अट्ठमछट्ठचउत्थ संवच्छरचाउमासपक्खेसु ।

व्या० 'उच्चारे इति' उच्चारो मलस्तत्र, प्रस्रवण मूत्र तत्र तत्परिष्ठापने इत्यर्थ, खेलशब्देन श्लेष्म तत्र 'सिंघाणपत्ति' ना सिकामलेऽनायुक्तोऽयत्नाप्रधान अयतनया तत्परिष्ठापक इत्यर्थ संस्तारकस्योपरि स्थित एव प्रतिक्रमण करोति कीदृश ? वासो वस्त्र तस्य प्रावरण प्रवर्षेण वेष्टन, तेन सह वर्तमान, अथवा स इति भिन्न पद वा अथवेत्यर्थ, सप्रावरण इति विशेषणम् ॥

व्या० 'न करेइ इति' न करोति पथि मार्गे यतना तलि याणति' पादतलरक्षकाणा पादत्राणभेदाना परिभोगमुपभोग क रोति चरति गच्छति 'अणुवद्धवासे' वर्षाकालेऽपि विहार क रोति, स्वपक्षाणा साधूना मध्ये परपक्षाणामन्यदर्शनिना मध्येऽ- पमाने सति अयोग्य विचारयतीत्यर्थ ॥

व्या० 'संजोअइ इति' संयोजयति भिन्नभिन्नस्थिताना द्र व्याणा आस्वादार्थं संयोगं करोतीत्यर्थ, अतिबहुक भुक्ते इगाल शब्देन समीचीन भक्तादि रागबुद्ध्या जेमति, 'साधूमगं इति' अनिष्टभक्तादिमुखविकारेण जेमति,'अणट्ठाए इति' क्षुधावेदनीय वैयावृत्त्यादिकारण विना भुंजइति' भोजनं करोति, किमर्थं ? रूपबलनिमित्त इति 'न धरेइत्ति न धारयति च पादप्रोंछनकम् ॥

व्या० 'अट्ठम इति' अष्टम तप षष्ठ तपश्चतुर्थं तपश्च न करो ति, कस्मिन कस्मिन् दिने ? तदाह—सांवत्सरिके पर्वणि अष्टम चातुर्मासिके षष्ठं, पक्षे पक्षदिवसे चतुर्दशीदिने चतुर्थं तपो,

१न करेइ सायबहुलो न य विहरइ मासकप्पेणं ॥१७॥
नीय गिण्हेइ पिंड एगागि अच्छए गिहत्थकहो ।
पावसुआणि अहिज्जइ अहिगारो लोगगहणम्मि ॥१८
पेरिभवइ उग्गकारी सुद्ध मग्ग निगूहए वालो ।
विहरइ सायागुरुओ सजमविगलेसु खित्तेसु ॥ १९ ॥
उग्गाइ गाइ हस्सइ असंवुडो सया करेइ कदप्प ।
गिहिकज्जचिंतगोवि य उसन्ने देही गिण्हइ वा॥२०॥

न करोति, कीदृश सन्? सातेन बहुल सुखशील मन् न च विहरति विहारं न करोति मासकल्पेन मासकल्पमर्यादया शेषकाले सत्यपि क्षेत्रेइत्यर्थं ॥

व्या० 'नीय इति' नीय नित्यमेतस्मिन गृहे यतायान् ग्राह्य इति नियतिपूर्वक पिण्डं गृण्हाति, एकाकी 'अच्छए इति' तिष्टति, समुदाये न तिष्ठति, गृहस्थाना कथाप्रवृत्तेयत्र सा गृहिप्रवृत्ति करोति, पापश्रुतानि ज्यातिर्वैदकानि अहिज्ज इति' अधीते पटति, अधिकारं करोति, लोकशब्देन लोकाना मनासि तेषा ग्रहणे रजने वशीकरणे इति यावत् ॥

व्या० परिभवइत्ति' पराभवति, कान्? उग्रकारिण उग्रविहारिणामुपहास करोतीत्यथ शुद्ध निर्दूषणं मग्गति मोक्षमार्गं निगूहयत्याच्छादयति बालो मूर्ख विहरइत्ति' विचरति साया गुरुआत्ति साते सौख्ये गुरुरेव गुरुकाऽत्यलम्पट इ यथ कथ विहरति? संयमविकलेषु सुसाधुभिरनधिवासितेषु क्षेत्रेषु ॥

व्याख्या—उग्गाइत्ति उग्रतया महता शब्देन 'गाइत्ति गायति, हसइत्ति' हसति असंवृतो विकसितमुख 'सया इति' सदैव कदर्पं इति कन्दर्पोद्दीपका प्रवृत्ति करोति, अपि चेति समुच्चये गृहिकार्यचिन्तक अवसन्नाय ददाति वस्त्रादि, गृण्हाति च तस्मात् ॥

धंम्मकहाओ अहिज्जइ घराघर भमइ परिकहतो ।
अगणणाइपमाणेण य अइरित्त वहइ उवगरण ॥२१॥

बारस काइयत्ति य तिन्नि य उच्चारकालभूमीओ ।
अतो बहिं च अहियासि अणहियासे न पडिलेहे ॥२२

गीयत्थ सविग्ग आयरियं मुअइ वलइ गच्छस्स ।
गुरुणो अणापुच्छा ज किंचि वि देइ गिण्हइ वा ॥२३

१ व्या० 'धम्मकहाओत्ति' धर्मकथा अधीते भणति, जनचित्तर ञ्जनार्थमित्यर्थ, स पुन परिकथयन धर्मकथा कथयन् गृहाद्गृहं भ्रमति गच्छति, गणनया साधूना चतुर्दशसख्याया साध्वीना च पञ्चविंशतिसङ्ख्याया उपकरणानि, प्रमाणेन यादृश कल्पते चो लपट्टकादीना मान तस्मादतिरिक्तमधिक सख्यया प्रमाणेन चो पकरण वहति धारयति ॥

२ व्या० 'बारस इति' द्वादशसङ्ख्या काइयत्ति लघुनीतियोग्या स्थण्डिलभूमय 'तिन्नियत्ति तिस्र उच्चारकालग्रहणयोग्या स्थण्डि लभूमय, एव सर्वा अपि सप्तविंशतिसङ्ख्या स्थण्डिलभूमय, उपाश्रयस्यान्तर्मध्येऽथ बहिश्च अहियासित्ति' यद्यध्यासितु शक्य न्ते तदा दूरे योग्या 'अणहियासेत्ति' इक्षितु न शक्यते सा योग्या समीपवर्त्तिनी एतादृशीं भूमिका न प्रतिलेखति नाव लोकयति ॥

३ व्या० 'गीयत्थ इति' गीतार्थं सूत्रज्ञातार 'सविग्गंत्ति' मोक्षा भिलाषिण एतादृश 'आयरियत्ति' स्वकीय धर्माचार्य 'मुअइत्ति' मुञ्चति नि कारण त्यजति 'वलइत्ति' वलति सम्मुखमुत्तर ददा ति, 'गच्छस्सत्ति' समुदायस्य शिक्षा ददत सम्मुख वदतीत्यर्थ, गुरूननापृच्छ्य गुर्वाज्ञा विनेत्यर्थ यत्किञ्चिद्वस्तु वस्त्रादि ददाति परस्मै, वाऽथवा गृण्हाति स्वय परस्मात् ॥

१ गुरुपरिभोग भुञ्जइ, सिज्जासथारउवगरणजाय ।
कित्तियतुमति भासइ अविणीओ गव्विओ लुद्धो ॥२४॥
२ गुरुपच्चक्खाणगिलाण -सेहवालाउलस्स गच्छस्स ।
न करेइ न य पुच्छइ निद्धम्मो लिंगमुवजीवी ॥२५॥
३ पहगमणवसहिआहार-सयणथंडिल्लविहिपरिठवण ।
आयरइ नेव जाणइ, अज्जावट्टावण चेव ॥ २६ ॥

---

१ व्या० 'गुरु इति' गुरुपरिभोग्य गुरूणां परिभोग्ये भोक्तुं योग्यं स्वयं भुनक्ति, शय्या शयनभूमि संस्तारकस्तृणादिमय', उपक रणानि कल्पकम्बलप्रमुखाणि, तेषां जात समुदायस्त गुरुभि भाषित सन् कित्तियतुमति' किं त्वमिति तुंकारेण भाषते, न तु भगवन् इति बहुमानपूर्वकं अविनीत सन् गर्वित सन् लुब्ध इति विषयादिषु लम्पट सन् एवं भाषते इत्यर्थं ॥

२ व्या० 'गुरु इति' गुरुप्रत्याख्याना अनशनादितप कारका, ग्लाना रोगिण सेहत्ति' नवदीक्षिता 'बालत्ति' लघुक्षुल्लका एतैराकुलस्य भृतस्य गच्छस्य समुदायस्य न करोत्युपेक्षते वैया वृत्यादि स्वय नैव पृच्छति पर ज्ञातारमह किं करोमीति निद्ध म्मा इति' धर्मरहित सन् लिंगस्य वेषमात्रस्योपजीवी उपजीवक लिङ्गमाजीविकाकारीत्यर्थ ॥

३ व्या० 'पहगमण इति' पथिमार्गे गमन, वसहित्ति उपाश्रय स्थित्यर्थ, आहारशब्देनाहारग्रहणं शयन, थण्डिल्लशब्देन स्थ ण्डिल्लशोधन एतेषां पदानां यो विधिस्त, 'परिट्ठवणत्ति' अशु द्धभक्तादीनां परिष्ठापने त्यजन, एतत्सर्वं जानन्नपि निर्द्धर्मतया नाद्रियते, अथवा नैव जानाति, अज्जा शब्देन साध्वी तस्या वट्टावण इति' लोकभाषया 'वर्त्तावबु' तदपि न जानाति 'चेव इति निश्चयेन ॥

संच्छदगमणउट्ठाण-सोअणो अप्पणेण चरणेण ।
समणगुणमुक्कजोगी वहुजावखयकरो भमइ ॥२७॥

वंच्छिव्व वायुपुन्नो परिभमइ जिणमय अयाणतो ।
थद्धो निव्विन्नाणो न य पिच्छइ किंचि अप्पसम२८॥

संच्छदगमणउट्ठाण-सयणो भुञ्जई गिहीणं च ।
पासत्थाइट्ठाणा हवति एमाइया एए ॥ २९ ॥

इति उपदेशमालागाथोक्तलक्षणसर्वपार्श्वस्थाद्यसयतवदन एव सभाव्यते, नतु किञ्चिद्विराधकदेशपार्श्वस्थादिवन्दने । यदुक्तं–चैत्यवन्दनकुलके तदधिकारे—

---

१ व्या० 'सच्छद इति' स्वेच्छया गमनमुत्थानमूर्ध्वी भवन 'सोअणोत्ति' शयनं यस्यैतादृश, अप्पणेणत्ति' आत्मना कल्पितेना चरणेनाचारेण गच्छति, श्रमणगुणा ज्ञानादयस्तेषा मुक्तो योगो व्यापारो येन स, बहुजीवाना बहुप्राणिना क्षयङ्करो विनाशकर एतादृशो भ्रमति ॥

२ व्या० 'वच्छित्ति' वस्तिरिव वायुपूर्ण, यथा वायुपूर्णा वस्ति दृतिकरफुल्लो दृश्यते, तथा गर्वेण भृत सन् परिभ्रमण करोति, जिनाना मत रागादिरोगौषधमजानन् सन् स्तब्धोऽनम्र सन् निर्विज्ञानो ज्ञानरहितो न च प्रेक्षते किञ्चिल्लवलेशमपि आत्मना सम तुल्य, एतावता सर्वानपि तृणसमान् गणयतीत्यर्थ ॥

३ व्या० 'सच्छद इति' स्वेच्छया गमनोत्थानशयन, अस्य विशेषणस्य पुनरुपादान गुर्वाज्ञा विना गुणप्राप्तिर्न भवतीति ख्यापनार्थं, च पुन 'भुंजइत्ति' भोजन करोति गृहस्थाना मध्ये, पार्श्वस्थादीना स्थानकानि एते पूर्वोक्तानि पार्श्वस्थादीना लक्षणानि भवन्तीत्यर्थ ॥

जे लोगुत्तमलिंगा लिंगिअ देहानि पुप्फतवोल।
आहाकम्म सव्व जल फल चेव सच्चित ॥१॥
भुजति थीपसग ववहार गथसगह भूस।
एगागित्तब्भमण सच्छद चिठ्ठिअ वयण ॥२॥
चेइअमठाइवास वसहीसु वि निच्चमेर सठाण।
गेअ निअचरणाण अच्चावण कणयकुसुमेहिं ॥३॥
तिविह तिविहेणेअ मिच्छत्त जेहिं वज्जिअ दूर।
निच्छयओ ते सड्ढा अन्ने उण नामओ चेव ॥४॥

अत एव--

सेसा मिच्छदिट्ठी गिहिलिंगकुलिंगदव्वलिंगेहिं।
इत्यत्र द्रव्यलिङ्गिनोऽनन्तरोक्तलक्षणा एव ग्राह्या। न तु सिज्जातरपिण्डादि कियद्दोषदूषितदेशपार्श्वस्थास्तेषां हि सातिचारचारित्रसद्भावेऽपि मिथ्यादृष्टित्वे प्रोच्यमाने महत्याशातना स्यात्। न च सातिचारचारित्रत्व तेषा मसिद्ध। यदुक्त श्रीप्रवचनसारोद्धारसूत्रवृत्तौ, एतेषु पार्श्वस्थ सर्वथैवाचारित्रिण केचिन्म यन्ते, तत्तु न युक्त प्रतिभाति यतो यद्येकान्तेन पार्श्वस्थोऽचारित्री स्यात् तदा स वतो देशतश्चेति विकल्पद्वयकल्पनमसङ्गत स्यात् चारित्राभावस्योभयत्रापि तुल्यत्वात्। तस्माज्जायते पार्श्वस्थस्य सातिचारचारित्रसत्तापि। यतो निशीथचूर्णावपि पासत्थो अच्छइ सुत्तपोरिसिं अत्थपोरिसिं वा न करेइ। दसणाइआरेसु वट्टइ। चारित्ते न वट्टइ, अ-

इआरे वा न वज्जेइ । एव सत्थो अच्छइ पासत्थोत्ति ”

एतावता चास्य न सर्वथा चारित्राभावोऽवसीयते । इति प्रवचनसारोद्धारवृत्तौ । अत्र च निशीथचूर्णौ—

चारित्ते न वट्टइ ।

। इति सर्वपार्श्वस्थग्रहणं ।

‘ अइआरे न वज्जइ ’

इति च देशपार्श्वस्थग्रहण संभाव्यते । पार्श्वस्थ च केचिद्चारित्रिण मन्यन्ते । इति वचनाद्वसन्ना दीना सुतरा चारित्रसद्भावो निर्णीयते । सवथा चारित्राभावे च तेपामागमोक्त कारणे जाते वय्यत्तमपि तेषा न सङ्गच्छते । नहि क्वापि महत्यपि कारणे परतीर्थिकानां वय्यत्व सिद्धान्ते प्रतिपादितम् । तथा श्रीओघनिर्युक्तौ—

[1]एस गमो पचण्हवि नीयाईण गिलाणपडिअरणे ।
फासुअकरणनिक्कायणकहणपडिकामणा गमण ॥१॥

इत्यत्र पार्श्वस्थादीना ग्लानत्वे प्रतिजागरण सविग्नविहारं प्रत्यभ्युत्थितत्वे सति साधुना मद्धाटकरण च ।

---

१ व्या० एप गम ’ एप परिचरणविधि ‘पचण्हवि पञ्चानामपि पपामत आह—‘ नियाइण ’ आदिशब्दात् पासत्योसपणकुसील्संसत्ताण, ‘गिलाणपडिअरणे’त्ति ग्लानप्रतिचरणे एप विधि ‘फासुअकरण’त्ति यदुत प्रासुकेन भक्तादिना प्रतिचरण कार्यं ‘निक्कायण’त्ति निकाचन करोति, यदुत दृढीभूतेन त्वया यदह ब्रवीमि तत्कर्तव्यम् कहण’त्ति धमकथाया, यद्वा ‘कहण’त्ति लोकस्य कथयति—किमस्य प्रव्रजितस्य शक्यतेऽशुद्धेन कर्तुम् ? ‘पडिकामण’त्ति यदसौ ग्लान प्रतिक्रामति तस्मात्स्थानान्निवर्तत इति यावत् तत स्थानात् ‘गमण’त्ति त ग्लान गृहीत्वा गमन करोति

नहि तेषां मिथ्यादृष्टित्वे सति सम्भवति इति । श्रीउपदेशमालायामपि—

[१]एगागी पासत्थो सच्छंदो ठाणवासि ओसन्नो ।
दुगमाईसंजोगा जह बहुआ तह गुरू हुंति ॥१॥

अत्र द्विकादियोगा गुरवो बहुदोषाः । पदानां वृद्धया दोषवृद्धेः ।

[२]गच्छगओ अणुओगी गुरुसेवी अनियओ गुणाउत्तो ।
संजोएण पयाण संजमआराहगा भणिया ॥ १ ॥

अत्र गच्छगतो न एकाकी । अनुयोगी न पार्श्वस्थो गुरुसेवी न स्वच्छन्द । अनियतवासी न नित्यवासी । आयुक्तो नाऽवसन्न । अत्र च पदानां वृद्धया गुणवृद्धिः । अत्र गच्छगतत्वादिपदचतुष्कयोगेऽनुयोगित्वायुक्तत्वयोरन्यतरस्यायोगे पार्श्वस्थत्वस्यावसन्नत्वस्य वा भावेऽपि

१ व्याख्या—एगागीति एकाकी धर्मबन्धुसहायरहित १ पार्श्वस्थो ज्ञानादीनां पार्श्ववर्ती २ सच्छंदाति गुर्वाज्ञारहित ३ स्थाने एकस्मिन्नेव स्थाने वसतीति स्थानवासी ४ 'ओसन्ना इति प्रतिक्रमणादिक्रियाशिथिलः ५ एतेषां दोषाणां मध्ये द्व्यादिसंयोगा, द्वौ दोषौ, त्रयो दोषा चत्वारो दोषा, पञ्च दोषा, एवं मिलिता 'जह इति' यथा यस्मिन् पुरुषे बहवो भवन्ति 'तह इति' तथा स गुरुविराधको भवतीत्यर्थ ॥

२ व्या०—'गच्छ इति गच्छगतो गच्छमध्ये तिष्ठति, अणुओगीति' अनुयोगो ज्ञानाद्यासेवन तत्रोद्यमवान्, गुरुसेवाकारक अनियतवासी मासकल्पादिना विहारकारी आयुक्त प्रतिक्रमणादिक्रियाया, एतेषां पञ्चपदानां संयोगेन भवमध्ये चारित्रस्याराधका भणिता, यत्रैते गुणा बहव स विशेषेणाराधक इत्यर्थ ॥

मयमाराधकत्व भणना, भणितमेव पार्श्वस्थादीनामपि चारित्रित्वम् । श्रीजीतकल्पभाष्ये—

तथा–पासत्थोसन्नाण कुसील–ससत्तनीयवासीण ।
जो कुणइ ममत्ताई परिवारनिमित्तहेउ च ॥१॥

तस्स इम पच्छित्त० ॥२॥

अह पुण साहम्मित्ता सजमहेउ च उज्जमिस्सति वा ।
कुलगणसघगिलाणे तप्पिस्सति एव बुद्धी तु ॥३॥
एव ममत्तकरेंते परिवालण अह व तस्स वच्छल्ल ।
दढ आलवणचित्तो सुज्झति सव्वत्थ साहू तु ॥४॥

इति श्रीजितकल्पस्य भाष्ये पार्श्वस्थादीना ममत्वादि ममायं परिवारो भविष्यतीत्यादिकारणेरेव निषिद्धं । साधर्मिकत्वादिकारणैस्तु अनुमतमेव । यच्च श्रीमहानिशीथे सुमतिश्राद्धस्यानन्तससारित्वमुक्तं, तन्न कुशीलसंसर्गमात्रजनित, किन्तु नागिलनाम्ना भ्रात्रा प्रतिबोधनेऽपि शुद्धचारित्रिमद्भावेऽपि तादृक् कुशीलनिर्द्धंधसपरिवारस्य सचित्तोदकपरिभोगादिबहुदोषदुष्टस्यैकान्तमिथ्यादृष्टेरभव्यस्य ज्येष्ठसाधोः पार्श्वे दीक्षाग्रहणेन, 'जारिसउ तुम अवुद्धि उ तारिसो सोवि तित्थयरो' इति श्रीतीर्थंकराशातनाकारित्वेन च वेदितव्यम् । किञ्च–यदि पार्श्वस्थादीना लिङ्गधारित्वमेवेष्ट स्यात् । तदा "दग पाणं पुप्फफलमित्यादि" पूर्वोक्तोपदेशमालागाथापञ्चकेन लिंगमात्रधारिणा लक्षणानि ।

याालमेसणाओ" इत्यादिपूर्वोक्तगाथासमुदायेन च पार्श्व
दिस्थानादि कुत पृथक् पृथक् प्रतिपादितानि ततोऽयमाशय।

गपाण पुप्फफल अणेसणिज्ज गिहत्थकिच्चाइ ।
जया पडिसेवती जइवेसविडवगा नवर ॥१॥"

इत्यादि लक्षणभूतो द्रव्यलिङ्गिनोऽसयता एव ।"चा-
ालमेसणाओ न रक्खइ" इत्यादि पार्श्वस्थादिस्थानानि
पुन पुन सेवमान पश्चात्तापमुक्तो गुरो पुरस्तदनालोचय-
शनै शनै कियता कालेनासयतो भवति। न चायमर्थ,
स्वमनीषिकयोच्यते यदुक्त श्रीकल्पेऽपि तृतीयखण्डे—

एसणदोसे सीअइ अणाणुतावी न चेव विअडेइ ।
नेव य करेइ सोधि न य विरमइ कालओ भस्से॥१॥

अत्र वृत्तिः एषणादोषेषु सीदति। तद्दोषदुष्ट भक्त-
पान गृह्णातीत्यर्थ, पुर कर्मादिदोषदुष्टाहारग्रहणेऽपि न
पश्चात्तापवान्। न चाशुद्धाहारग्रहणाद्विरमति। न विकट-
यति गुरूणा पुरत स्वदोष प्रकाशयति। विकटयति वा
गुरुदत्त प्रायश्चित्त न करोति। एव कुर्वन् कियतामपि का
लेन चारित्रात् परिभ्रश्येदिति। ततो आवश्यके—

'गुणाहिए वदणय छउमत्थो गुणागुणे अयाणतो ।
वदिज्जा गुणहीण गुणाहिय वावि वदावें ॥१॥

व्या० इहोत्सर्गत गुणाधिके साधौ वन्दनं कर्तव्यमिति वा
क्यशेष, अयं चार्थ श्रमण वन्देतेत्यादिग्रन्थात्सिद्ध, गुणहीन
तु प्रतिषेध पश्चात् कृतिकर्मेत्यादिग्रन्थात् इदञ्च गुणाधिकत्व
गुणहीनत्व च तत्त्वतो दुर्विज्ञेयम्, अत एवाह छद्मस्थस्तत्त्वतो गुणागुणान्
आत्मान्तरवर्तिन अजानन्' अनवगच्छन् किं कुर्यात् ? वन्देत
वा गुणहीन कञ्चित् गुणाधिक चापि च दापयेत् ॥

इत्यावश्यकवचनप्रामाण्यात् कालोचितयतनया य तमाना यतयो गुणाधिकत्वात् श्राद्धानां वन्द्या एव । ननु न वय सर्वथा साधूनामभाव वदाम. । किन्तु मा पार्श्वस्थादयोऽभूवन् मा तद्वन्दनदोपश्चाभूत्, इति न वन्दामहे । तर्हि जात युष्माकमप्याषाढाचार्यशिष्यवदव्यक्तनिह्नवत्वं । यथा च पार्श्वस्थादिवन्दनदोपात् भीयते । तथा—

माणे १ अविणय २ खिसा ३ नीअगोअ ४ अवोहि ५ भवबुड्ढी ६ अनमते छद्दोसा ॥

इति साध्ववन्दनजनिताबोध्यादिदोपेभ्यः कसान्न भीयते, ततो मोक्षार्थिन् ! सकलसङ्घप्रमाणीकृत मार्गमवगणय्य साम्प्रतमेवास्मदादिदृष्टचरेणाग्राह्यनामधेयेन केनापि पुरुषापशब्देन साधूनामुपरि जातमत्सरेण निजकुमतिपरिकल्पितेपु च वचनेपु मा कर्णं देहि । यत — श्रीउपदेशमालाया,

निअगमइ विगप्पिअ चिंतिएण सच्छदवुद्धिरइएण । कत्तो पारत्तहिअ कीरइ गुरुअणुवएसेण ॥१॥

इति ॥ तथा बृहद्भाष्ये—

---

१ व्याख्या— नियगमइ इति' निजकमत्या स्वकीयबुद्ध्या विकल्पित स्थूलावलोकन सूक्ष्मापर्यालोचन, तेन स्वकीयमतिकल्पनयेत्यर्थ , स्वच्छदबुद्धिरचितेन स्वत प्रमतिचेष्टितेनेत्यर्थ । कत्तो' इति कुत 'पारत्त' परत्र परे लोके हितमात्मनो हित 'कीरइ' इति क्रियते ? गुर्वनुपदेशात उपदेशाऽयोग्येन गुरुकर्मणेति भाव , स्वेच्छाचारिण परत्र हित न प्राप्नुवन्तीत्यर्थ

ससिज्जइ निअकिरिआ दूसिज्जइ सयलसघववहारो
कत्तो इत्तो वि परावि माणणा हदि सघस्स ॥१॥
उप्पन्नससया जे सम्म पुछति नेव गीअत्थे ।
चुक्कति सुद्धमग्गा ते पल्लवगाहि पडिच्चा ॥२॥
जो मोहकलुसिअ-मणो, कुणइ अदोसे वि दोससकप्प
सो श्रप्पाण वचइ पेश्रावमगोवणिसुउव्व ॥ ३ ॥
अवसउणकप्पणाए सुदरसउणो (वि) असुदर फलइ ।
इअ सुदरावि किरिश्रा असुहफला मलिणहिअयस्स ॥

इति । न च शासने केषांचिद्दोषान् दृष्ट्वा सर्वेषा सदोषत्वमारोपयितु युक्त, यतो बृहद्भाष्ये—
जो जिणसघ हीलइ सघाऽइवस्स दुक्कय दट्ठु ।
सव्वजणहीलणिज्जो भवे भवे होइ सो जीवो ॥ १ ॥
जइ कम्मवसा केई असुह सेवति किमिह सघस्स ।
विट्टालिज्जइ गगा कयाइ किं कागसबरेहिं ॥२॥
जो पुण संताऽसते दोसे गोवेइ समणसघस्स ।
विमलजस किंत्तिकलिओ सो पावइ निव्वुइ तुरिअ ॥३॥
जह कणरक्खणहेउ रक्खिज्जइ जत्तश्रो पलालपि ।
सासणमालिन्नभया । तहा कुसीलपि गोविज्जा ॥४॥

इति । तथा–ननु पार्श्वस्थादीना वद्यत्वे, कथ पाम त्थो ओसन्नो इत्यादिवाक्यै सह न विरोध , उच्यते–

सग्रदेशापार्श्वस्थादीनामुक्तयुक्त्या वन्द्यत्वमवन्द्यत्व चास्ति । आगमवाक्यानि च नयवाक्यप्रमाणवाक्यत्वेन द्विधाऽपि भवति । यत. श्रीउपदेशमालाया—

नांणाहिओ वरतर हीणो वि हु पवयण पभावतो ।
नयदुक्कर करिंतो सुट्ठु वि अप्पागमो पुरिसो ॥१॥

श्री आवश्यके—

नाण मुणेह नाण गुणेह नाणेण कुणउ किच्चाइ ।
भवससारसमुद्द नाणी नाणेण उत्तरइ ॥ १ ॥

तथा भक्तपरिज्ञा प्रकीर्णके—

दसणभट्ठो भट्ठो न हु भट्ठो होइ चरणपब्भट्ठो ।
सिज्झति चरणरहिआ दसणरहिआ न सिज्झति ॥१॥

तथा श्रीआवश्यके—

दसारसीहस्स य सेणिअस्स पेढालपुत्तस्स य सच्चइस्स अणुत्तरा दसणसपया तया विणा चरित्तेणऽहर गइ गया

तथा श्री आवश्यके—

---

१ व्याख्या--'नाणाहिओ इति ' ज्ञानेनाधिक पूर्णो ज्ञानाधिको वरतर श्रेष्ठ, हीनोऽपि चारित्रक्रियाहीनोऽपि हु निश्चित प्रवचन जिनशासन प्रभावयन्, एतादृश क्रियाहीनोऽपि ज्ञानी श्रेष्ठ इत्यर्थ, 'न य इति ' न च श्रेष्ठो दुष्कर मासक्षपणादि कुर्वन् सम्यक्प्रकारेण ' अप्पागमोत्ति ' अल्पश्रुत पुरुष क्रियावानपि ज्ञानहीना न श्रेष्ठ इत्यर्थ ॥

इय नाणचरणरहिओ सम्मद्दिट्ठी वि मुक्खदेस तु ।
पाउणइ नेव नाणाइसजुओ चेव पाउणइ ॥ १ ॥

तथा श्रीउत्तराध्ययने—

नाण च दसण चेव चरित्त च तवो तहा ।
एस मग्गुत्ति पण्णत्तो जिणेहिं वरदसिहिं ॥ १ ॥

श्री आवश्यके—

नाणं पयासग सोहओ तवो सजमो अ गुत्तिकरो ।
तिण्ह पि समाओगे मुक्खो जिणसासणे भणिओ॥२॥

इत्यादिषु क्वचित्केवलस्य ज्ञानस्य क्वचिद्दर्शनस्य क्वचिच्चारित्रस्य क्वचित्तत्रयस्य क्वचिज्ज्ञानदर्शनचारित्रतपसां च मोक्षसाधनत्वं प्रतिपाद्यते । न चात्र कश्चिद्विरोध , न चापि मतिमतामत्र मतिमोह कर्तुं युक्त. । आगमे हि कानिचित् एकैकांशग्राहकतया नयवाक्यानि भवन्ति, कानिचिच्च सपूर्णार्थग्राहकतया प्रमाणवाक्यानि, अत एवातिनिपुणमतीनामेव भगवदाज्ञा अवगन्तु शक्या । यदावश्यके—

झाइज्जा निरवज्ज जिणाण आण जगप्पईवाण ।
अनिउणजणदुन्नेय नयभगपमाणगमगहण ॥ १ ॥
तथा— पुव्वावरेण परिभाविऊण सुत्त पयासिअव्वति
ज वयणपारतत एअं धम्मत्थिणो लिङ्ग ॥ १ ॥

ततश्च पार्श्वस्थादीनां क्वचिदवन्द्य त्वमेव प्रतिपाद्यते ।

क्वचिच्चावश्यकजीतकल्पादौ कारणे साधून् श्राद्धाश्रित्य वंद्यत्वम् । जीवानुशासनग्रन्थादौ तु--

किं च जइसावयाण नमण नो सम्मय भवे एश्र ।
पासत्थाईश्राण ता कह उवएसमालाए ॥ १ ॥
सिरिधम्मदासगणिणा न वारिश्र वारिश्र च श्रन्नेसिं ।
परतित्थिश्राणपणमणइच्चाईवयणओ पयड ॥ २ ॥
सघेण पुणो चाहिं जो विहिओ हुज्ज सो उ नो वदे ।
पासत्थाई सड्ढाण सव्वहा एस परमत्थो ॥ ३ ॥

इत्यादि युक्त्या श्राद्धानाश्रित्य निष्कारणेऽपि वन्द्यत्वम् । क्वचिच्चासंयतत्व क्वचिच्च चारित्रित्वं प्रतिपाद्यते, तदेषां सर्वेषां वाक्यानामयं भावो बहुश्रुतैरभिधीयते । सर्वपार्श्वस्थसर्वावसन्नयथाच्छन्दा बहुदोषत्वेनावन्द्या भवन्तु । देशपार्श्वस्थादयस्तु तादृगपरशुद्धचारित्र्यभावे प्रागुक्तयुक्तिभिश्चारित्रसत्तायाः प्रतिपादितत्वेन बकुशकुशीलादिलक्षणान्तःपातित्वेन च प्रागुक्तज्ञानग्रहणादिकारणैश्च वन्द्या एव । उक्तमपि-

पलए महागुणाण हवंति सेवारिहा लहु गुणा वि ।
अत्थमिए दिणनाहे अहिलसइ जणो पईवंपि ॥१॥
गुणगणरहिओ अगुरू दट्ठव्वो मूलगुणविउत्तो जो ।
नयगुणमित्तविहीणित्थ चडरुद्दो उदाहरण ॥ २ ॥

तथा ३५५ गाथामाने श्राद्धप्रतिक्रमणसूत्रभाष्येऽप्युक्त किञ्च

सम्मरगगुणजुत्थ पत्त पाविज्जए न दुसमाए ।
ईअरम्मि वि तो भत्ती कायव्वा तम्मि भणिअ च १
पलए महागुणाण० ॥ २ ॥
भूरिगुणो विरलोच्चिअ इक्कगुणो वि हु जणो न सव्वत्थ
निद्दोसाण वि भद्दं पससिमो थेव दोसे वि ॥ ३ ॥
दसणनाणचरित्त तत्र० ॥ ४ ॥

इति । श्रीमहानिशीथेऽपि पूर्वगुर्व्योग्यगुणौघमुक्त श्री वीरार्द्धपंक्तिसहस्रधनन्तर पट्कायारम्भवर्ज्यव गुर्व्व भ्रत योक्तः तदत्र रहस्य यथा ।

"वतुच्चारसुरागोमससमभिर्मात" इत्यादिनाऽऽधाक र्मणो अतिनिन्द्यत्वप्रतिपादनेऽपि—

सोहतो अइमेतह जइज्ज सव्वत्थपणगहाणीए ।
उस्सग्गववायविउ जह चरणगुणा न हायति ॥ १ ॥

इत्यादिवचनात्पञ्चकपञ्चकपरिहान्यादियतनया देश्या ग्रार्थमाधाकर्म गृण्हानोऽपि शुद्ध एव । एव "असुट्ठाणे पडिआ चपगमाला न कीरइ सीसे" इत्यादि वाक्यै पार्श्वस्थादीना सगतिमात्रनिषेधेऽपि विशिष्टविशिष्टतरवि-शिष्टतमगुणसाध्वयोगे क्रमेण तेभ्यो हीनहीनतरहीन तमगुणानामपि साधूना वन्दनादि सङ्गतमेव । यद्वा सा-म्प्रतकालोचितयतनया यतमाना यतय प्रमादादिपारव-श्येन किञ्चित किञ्चित विराधयन्तोऽपि मोक्षार्थमुन्नता प्रागुक्तलक्षणवकुशकुशीलत्व न व्यभिचरन्तीति तीर्था धारत्वेन निग्रन्थत्वेन च निर्विवाद वदनीया एव । यत –

अज्जवि तिन्नपइन्ना गरुअभरुव्वहणपच्चला लोए ।
दीसंति महापुरिसा अक्खडिअ सीलपब्भारा ॥ १ ॥
अज्जवि तवसुसिअंगा तणुअकसाया जिइंदिआ धीरा ।
दीसंति जए जइणो वम्महहिअय विआरंता ॥ २ ॥
अज्जवि वयसपन्ना छज्जीवनिकायसजमुजुत्ता ।
दीसंति तवस्सिगणा विगहविरत्ता य महासत्ता ॥३॥
अज्जवि दयखंतिपइट्ठिआइ तव नियमसीलकलिआइ
विरलाइ दूसमाए दीसंति सुसाहुरयणाइ ॥४॥
इयजाणिऊण एअं मा दोसं दूसमाइदाऊण ।
धम्मुज्जमं पमुचह अज्जवि धम्मो जए जयइ ॥५॥
ता तुलिअनिअबलेणं सत्तोइ जहागमं जयताण ।
सपुन्नच्चिअकिरिआ दुप्पसह ताण साहूण ॥६॥

न च प्राय. प्रतिगच्छं सामाचारीणां भेददर्शनान्न ज्ञायते का सत्या असत्या वेति ? तदकरणमेव वरमिति चिंतयितु युक्तं । यदुक्तं श्रीभगवत्या प्रथमशते द्वितीयोद्देशके—

अत्थिणं भंते ! समणा वि निग्गंथा, कंखामोहणीयं कम्मं वेअंति । हंता अत्थि । कहन्नं भंते ! समणा निग्गंथा कंखामोहणिज्जं कम्मं वेअंति । गोयमा ! तेहिं २ नाणंतरेहिं दंरिसणंतरेहिं । चरित्तंतरेहिं लिंगंतरेहिं पवयणंतरेहिं पावयणंतरेहिं क-

प्पतरेहिं मग्गतरेहिं मयतरेहिं भगतरेहिं नयतरेहिं निअमतरेहिं पमाणतरेहिं सकिआ कखिआ वितिगिच्छिआ भेअसमावन्ना एव खलु समणा निग्गथा केखामोहणिज्ज कम्म वेअति ।

अत्र वृत्ता मग्गतरेहिं मयतरेहिं इति पदद्वयव्याख्या यथा-मार्ग पूर्वपुरुषक्रमागता सामाचारी तत्र केषांचित् द्विचैत्यवन्दना अनेकविधकायोत्सर्गकरणादिका आवश्यकसामाचारी तदन्येषा तु न तथेति किमत्र तत्त्व। समाधि गीतार्थाऽशठप्रवर्तिता असौ सर्वापि न विरुद्धा आचरितलक्षणोपेतत्वात्, आचरितलक्षण चेदम्—

असढेण समाइण्ण ज कत्थइ केणइ असावज्ज ।
न निवारिअमन्नेहिं वहुमणुमयमेअमायरिअ ॥१॥

तथा मत समाने एवागमे आचार्याणामभिप्रायविशेष. स तत्र सिद्धसेनदिवाकरो मन्यते युगपत्केवलिनो ज्ञानं दर्शन, चान्यथा तदावरणक्षयनिरर्थकता स्यात्। जिनभद्रगणिक्षमाश्रमणस्तुभिन्नसमये ज्ञानदर्शने जीवस्वरूपत्वाद्यथा तदावरणक्षयोपशमे समानेऽपि क्रमेणैवमतिश्रुतोपयोगौ, न चैकतरोपयोगे इतरक्षयोपशमाभाव । तत्क्षयोपशमस्योत्कृष्टत षट्षष्टिसागरोपमप्रमाणत्वात् । अत किं तत्त्व । अत्र समाधि. यदेवमतमागमानुपाति, तदेव सत्यमिति म तव्यमितरत्पुनरुपेक्षणीयम् । यथा बहुश्रुतेन नैतदवसातु शक्यते, तदेव भावनीयम्, आचार्याणा सम्प्रदायादिदोषादय भेदो मत । जिनाना तु मत-

मेकमेवाविरुद्धं च, रागादिरहितत्वात् । आह च—

अणुवकयपराणुग्गह-परायणा ज जिणा जुगप्पवरा ।
जिअरागदोसमोहा य नणहा वाइणो तेण ॥१॥

इति । तस्माद् व्यवहारतो यतमाना यतयो धर्मार्थिना वन्द्या एव यत श्रीउत्तराध्ययने—

धम्मज्जिअं च ववहार बुद्धेहायरिअ सया ।
तमायरतो ववहार गरिह नाभिगच्छइ ॥१॥

श्री आवश्यके—

ववहारो वि हु बलव ज छउमत्थपि वदई अरिहा ।
जो होइ अणाभिन्नो जाणतो धम्मय एअ ॥१॥

जइ जिणमय पवज्जह ता मा ववहारनिच्छएमुअहा
ववहार नउच्छेए तित्थुच्छेओ हवइ जम्हा ॥२॥

व्यवहारनयमनुसरत एव हि क्रमेण निश्चयशुद्धिप्राप्त्या निःश्रेयसप्राप्तिर्भवति । अत्र साधुस्थापनाधिकार संवेगरङ्गशालाग्रन्थतस्तद्गाथाभिरेव लिख्यते यथा ।

इत्थतरम्मि सड्ढो आसधरो नाम भणइ दुविअड्ढो ।
भयव जहुत्तसाहू न सनि गुरुणो कह ते य ॥१॥

पिंडविसुद्धिं न तहा कुणति१ सक्कपि नायरत्ति विहिं
पासत्थाईहि सम चयति नालवणनमणाइ२ ॥२॥

सामत्थकालदोसा सक्कपि कयाइ जायइ असक्क ।
आयव्वयतुलणाए तदकरणे वि हु न तो दोसो॥१३॥
पासत्थाईसंगो नमणं च न सगयति ज वयसि ।
त पिहु मिच्छासिद्धत–वयणओ तप्पवित्तीए ॥१४॥
नणु सिद्धतनिसिद्ध आलवणाई वि किं पुणो नमण ।
ओसन्नो पासत्थो इच्चाई भूरि भणणाओ ॥१५॥
सव्वमिम ता सुत्ते वायनमोक्कारमाइ किं वुत्त ।
परिआयपरिसपुरिसा द[दे]विक्खओ अ हतय मूढा॥१६
जइ ते फुड अजोगा ता–तन्नमणाइकीसाणुन्नाय ।
कारणमवि हु इहरा पासडीण पि त होउ ॥१७॥
अह ते नो जिणलिंगे का तदविक्खा हु भावसारत्ते ।
अणुअत्तणा य भणिआ तेसिं पि हु जेण वुत्तमिम॥१८॥
अग्गीयादाइन्ने खिते अन्नत्थ ठिइअभावम्मि ।
भावाणुवघायणुवत्त–णाए तेसिं तु वसिअव्व ॥ १९ ॥
इहरा सपरुवघाओ उच्छोभाईहिं अत्तणो लहुआ ।
तेसिं च कम्मवधो दुगपि एअ अणिट्ठफल ॥ २० ॥
ता दव्वओ उ तेसि अरत्तदुट्ठेण कज्जमासज्ज ।
अणुवत्तणत्थमेसिं कायव्व किंपि उ ण भावाओ॥२१॥
न परुवंति य सुद्ध एअ पि य दूसण जहाजोग ।
पन्नवण चिअ वुत्त इहरा दोसो त्ति ज भणिअ ॥ २२ ॥

आमे घडे निहित्त जहा जल त घड विणासेइ ।
इय सिद्धतरहस्स अप्पहार विणासेइ ॥ २३ ॥
जोग्गाजोग्गमबुज्झिय धम्मरहस्स कहेइ जो मूढो ।
सघस्स य पवयणस्स य धम्मस्स य पच्चणी ओ सो॥२४
न पमाणजुत्तमुवहिं धरति एअ पि तुच्छमाभाइ ।
असढोवदसिअत्तेण तव्विहस्सुवहिनिवहस्स ॥ २५ ॥
इहरा वाहुठिअ पत्त एग तु पडलयच्छन्न ।
पत्ता चधकय पुण वीअ मत्त अगोअर उ ॥२६॥
एगगि अ रयहरण भवे न इण्हि विसिट्ठमुणिणो वि ।
तो एत्थपयत्थम्मि य पुव्वमुणिणो च्चिअ पमाण॥२७॥
सेवति य अववाय दूसणमेअपि घडइ नो सम्म ।
तव्विहसघयणाई विरहा सुत्तुत्ति उ तह य ॥ २८ ॥
सव्वत्थ सजम सजमाओ अप्पाणमेव रक्खिज्जा ।
मुच्चइ अइवायाओ पुणो विसोही नयाविरई ॥२९॥
किंच-काह अच्छित्त अदुवाअहीअ नवोवहाणमि
अउज्जमिस्स ।
गणंव नीईइव सारइस्स, सालवसेवी समुवेइ मोक्ख३०
सीलगाण विभावो नाउ सव्वन्नुवयणओ चेव ।
कह भणिअमन्नहेम वकुसकुसीलेहि जा तित्थ ॥३१॥
कालानुसारिकिरियारयत्ति चारित्तिणो पवुच्चति ।

जह कप्परुक्खविरहे रुक्खा भन्नति निंवा वि ॥३२।
अह सम्म मा मुणियमि मुणिम्मि नमणाइ कीरइ कह त्ति
वभिचार दसणाश्रो एअपि न सुदर जम्हा ॥३३॥
छउमत्थसमयवजा ववहारनयाणुसारिणी सवा ।
त ववहार कुव्व सुज्झइ सव्वो वि समईए ॥३४॥
जइ जिणमय पवज्जह ता मा ववहार निच्छए मुअह
ववहारनउच्छेए तित्थुच्छेओ हवइ जम्हा ॥३५॥तथा--
धम्मज्जिश्र च ववहार वुद्धेहायरिय सया ।
तमायरतो ववहार गरिह नाभिगच्छइ ॥ ३६ ॥
ता दूसमाए दोस--विउ जत्थ ज पलोएज्जा ।
नाणे व दसणे वा चरणे वा तमुववूहेज्जा ॥ ३७ ॥
किञ्च—
न विणा तित्थ निअट्ठेहिं नातित्था य निश्रंठिआ ।
छक्कायसजमो जाव ताव अणुसज्जणा दुण्ह ॥३८।
तहा--जा सजमया जीवेसु ताव मूला य उत्तरगुणा य
इत्तरिअछेअसजम--निग्गथवउसा य पडिसेवी ॥३९॥
वीरपुरिसपरिहाणिं नाऊण मदधम्मिआ केइ ।
सविग्गजण हीलति ताण पयडा इमे दोसा ॥४०॥
सतगुणछायणा खलु परपरिवाश्रो श्र होइ अलिश्र च
धम्मे य श्रवहुमाणो साहुपउसे य ससारो ॥४१॥

जइ सपुन्न एअ हविज्ज सिद्धो विना न वुच्छिज्जा
एअपि नो मुणिज्जइ अहो महामोहमाहप्प ॥४२॥
देवगुरुधम्मकिरिअ पुव्व जुत्तो विआणिउ ते वि ।
हीलिज्जती जइणो होही अकयनु(न्नु)ओ लोगो४३
इय नरवर! किंचिर-मवुदजीवदुव्विलसिअ निसामिहिसि
साहूहिं तो वि अपरो मोक्खोवाओ धुव नत्थि॥४४॥
आगमतत्त च नरिंद! मुणेसु गयरागदोसमोहाण ।
एगतपरहिआण जिणाण वयण हिअ अमिअ ॥४५॥
दिट्ठतजुत्तिहेऊ गभीरमणेगभगनयनिउण ।
आईमज्झवसाणे सुदूरपरिचत्तवभिचार ॥४६॥
सिवपहरयणपईव च कुमयपवणप्पणोल्लणासज्झ ।
सज्झव वहुविहाई सयतारताराविवहजणण ॥ ४७ ॥
इय देवम्मि गुरुम्मि अ आगमनिसए य जायवोहस्स
सकाइदोसरहिआ पडिवत्ती होइ सम्मत्त ॥४८॥
एयम्मि पावियम्मि नत्थि तय ज न पाविय होइ ।
एय मूलाउच्चिअमहल्लकल्लाणवल्लीओ ॥ ४९ ॥
अह नयणदत्तनरवइ-सुएहिं सजायपरमतोसेहि ।
भणिय भयव ! साहुप्प-सायओ पत्तरिद्धीण ॥५०॥
अम्हाणं पि हु पुरओ को एसो साहु दूसण कुणइ ।
अहवा होअव्व एत्थ पुव्वदुचरिअदोसेण ॥ ५१ ॥

ता भयव ! साहह को पुण एस पुव्वे भवम्मि हुतोत्ति ।
मुणिवइणा जंपिअमेगमणसा भो ! निसामेह ॥५२॥
एसो सावत्थीए नयरीए गिहीवइस्स वभस्स ।
पुत्तो नाम कुवेरोत्ति आसि पिउणो य सो दोसो ॥५३॥
सभूयगणिसमीवे पव्वइओ किच्चिराणि वि दिणाणि ।
निणयनएहिं वड्ढिअ पच्छापरिवडिअ उच्छाहो ॥५४॥
आवस्सयाइएसु आलस्सं पइदिणंपि कुणमाणो ।
गुरुणा सासिज्जतो साहूहियकोवमुवहइ ॥ ५५ ॥
एसिंपि साहुखलिअ पिक्खित्ता भणइ निययदुचरिअ
रवखति न थेवपि हु परस्स पुण दिंति उवएस ॥५६॥
वालगिलाणाईणं वेआवच्च सया वि किच्चंति ।
गुरुणो वि परेसिं पन्नवंति न सयं पुण करंति ॥५७॥
एमाइ दूसणाइ वागरमाणो किलिट्ठमणवयणो ।
मरिउ असुरनिकाए किव्विसिआसु सुरिं पत्तो ॥५८॥
तत्तो चविऊ इण्हि सावयभाव गओ वि एस इह ।
पुव्वाणुवेह उचिअ पडुच्च मुणिणो इअ भणेइ ॥५९॥
इति । यदुक्तं कल्पभाष्ये—

उस्सुत्तभासगा जे ते दुक्करकारगावि सच्छदा ।
ताण न दंसण पि हु कप्पइ कप्पे जओ भणिअ ॥१॥

जे जिणवयणुत्तिन्न वयण भासति जे अ मन्नति
सम्मद्दिट्ठीण तद्दसण पि ससारवुड्ढिकर ॥ २ ॥

इलि साम्प्रतसमयोचितयननया यतमानाः साधवः वंदनी

यय—

इति श्री सुविहितपूर्वाचार्य प्रणीता—

॥ गुरुतत्त्वसिद्धिः ॥

समाप्ता।

—※—



॥ प्रतिमागुणदोषविचारः ॥

॥ बिम्बपरीक्षाप्रकरणम् ॥

अतीताब्दशत यत्स्याद् यच्च स्थापितमुत्तमै. ।
तद् व्यङ्गमपि पूज्य स्याद् बिम्ब तन्निष्कलङ्कवत् ॥१॥
धातुलेप्यादिक बिम्ब व्यङ्ग सस्कारमर्हति ।
काष्ठपाषाणनिष्पन्न सस्काराई पुनर्नहि ॥ २ ॥
नुंलीऽगुलीबाहुनासांऽह्नीणां भङ्गेऽप्यनुक्रमात् ।
शत्रुभीर्देशभङ्गश्च बन्धः कुलधनक्षय ॥ ३ ॥
पीठयानपरीवार--ध्वसे सति यथाक्रमम् ।
जनवाहनभृत्यानां नाशो भवति निश्चितम् ॥ ४ ॥
आरभ्यैकाङ्गुलाद् बिम्ब यावदेकादशाङ्गुलम् ।
गृहेषु पूजयेद् बिम्ब मूर्द्धपादज (?) पुन ॥ ५ ॥
प्रतिमाकाष्ठलेप्याश्म--दन्तचित्रायसां गृहे ।
मानाधिकपरीवार-- रहिता नैव पूज्यते ॥ ६ ॥
रौद्री निहन्ति कर्त्तार अधिकाङ्गा तु शिल्पिनम् ।
नासा द्रव्यविनाशाय स्वल्पाऽऽस्या भोगवर्जिता ॥७॥
वक्रनासाऽतिदु खाय ह्रस्वाङ्गा क्षयकारिणी ।
अनेत्रा नेत्रनाशाय दुर्भिक्षाय कृशोदरी ॥ ८ ॥

---

१ ह्रस्वाङ्गुलि' इति पद युज्यत ?

जायते प्रतिमा हीन-कटिराचार्यघातिनो ।
जङ्घाहीना भवेद् भ्रातृ-पुत्रमित्रविनाशिनो ॥ ९ ॥
पाणिपादविहीना तु धनक्षयविनाशिनो ।
चिर पर्युपिना वा तु नाथतो ऽपावतस्ततः ॥ १० ॥
अर्धहृत् प्रतिमोत्ताना चिन्ताहेतुरधोमुखी ।
आधिप्रदा तिरश्चीना नीचोच्चस्था विदेशदा ॥११॥
अन्यायद्रव्यनिष्पन्ना परवास्तुदलोद्भवा ।
हीनाऽधिकाङ्गी प्रतिमा स्वपरोन्नतिनाशिनी ॥ १२ ॥
सर्वेषामपि धातूना रत्नस्फटिकयोरपि ।
प्रवालस्य च निम्बेपु चैत्यमान यदृच्छया ॥ १३ ॥
ऊर्ध्वदृग्द्रव्यनाशाय तिर्यग् भोगस्य हानये ।
दु खदा स्तब्धदृक् चाधोमुखी कुलविनाशिनी॥ १४ ॥
प्रतिमाया दवरका भवेयुश्चेत्कथञ्चन ।
सदृग्वर्णा न दुष्यन्ति वर्णास्त्वन्ये तु दूषिताः ॥१५॥

॥ इति विम्वपरीक्षाप्रकरणम् ॥

॥ चिम्वपूजापरीक्षाप्रकरणम् ॥

पित्तलसुवन्नरुप्प--रयणाण चदकतमाइण ।
कुज्जाओ लक्खणजुआ सत्तगुलजाव नो अहिआ ॥१॥

गिहिपडिमाण पुरओ वलिविरथारो न चेव कायव्वो।
निच्चनवण तिअसज्झ–मच्चण भावओ कुज्जा ॥ २ ॥

लेवोवलदंतयकट्ठलोह--वत्थूण पचपडिमाओ।
नो कुज्जा गिहपडिमा कुलधणनासाइआ जम्हा ॥ ३॥

वेउव्वियसासय मगलाओ आगासचित्तलिहिआओ।
वदति सेसाओ जिणपडिमाओ जणकयाओ ॥ ४ ॥

दालिद्द दोहग्ग कुज्जाइ कुसरीर कुगइ कुमइओ ।
अवमाण रोगसोगा न हुती जिणविंवकारीण ॥ ५ ॥

समयवलिसुत्ताओ लेवोवलकट्ठदतलोहाणं ।
परिवारमाणरहिअ घरम्मि नो पूअए विंवं॥ ६ ॥

एकाङ्गुल भवेत् श्रेष्ठ द्व्यङ्गुल धननाशनम्।
त्र्यङ्गुलेन भवेत्सिद्धिर्वर्जयेच्चतुरङ्गुलम् ॥ ७ ॥

पञ्चाङ्गुल भवेद्वित्त उद्वेग तु षडङ्गुले।
सप्ताङ्गुले तु गोवृद्धिस्त्यजेदष्टाङ्गुल सदा ॥ ८ ॥

नवाङ्गुल तु पुत्राय अर्थहानिर्दशाङ्गुले ।
एकादशाङ्गुल विम्व सर्वकामार्थसिद्धिदम् ॥ ९ ॥

नृपभयमत्यङ्गायां हीनाङ्गायामकल्पिता भर्तु ।
कृशोदरायां क्षुद्भयमर्थविनाश. कृशाङ्गाया ॥ १० ॥

आयु श्रीफलजयदा दारुमयी मृन्मयी तथा प्रतिमा
लोकहिताय मणिमयी सौवर्णी पुष्टिदा भवति ॥१०॥
रजतमयी कीर्तिकरी प्रजावृद्धिं करोति ताम्रमयी।
भूलाभ तु महान्त शैलप्रतिमाऽथवा लिङ्गम् ॥ ११ ॥
प्रासादतुर्यभागस्य समाना प्रतिमा मता ।
उत्तमायु कृते सा तु कार्यैकेनाधिकाङ्गुला ॥ १३ ॥
अथवा स्वदशांशेन हीनस्याप्यधिकस्य च ।
कार्या प्रासादपादस्य शिल्पिभि प्रतिमा मता?॥१४॥
सर्वेषामपि धातूनां रत्नस्फटिकयोरपि ।
प्रवालस्य च बिम्बेषु चैत्यमान यदृच्छया ॥ १५ ॥
प्रासादगर्भगेहार्धे भित्तित पञ्चधा कृते ।
यक्षाद्या प्रथमे भागे देव्य सर्वा द्वितीयके ॥ १६ ॥
विनायक स्कन्ध कृष्णानां प्रतिमा स्युस्तृतीयके ।
पद्मा तु तुर्यभागे च लिङ्गमीशा न पञ्चमे ? ॥१७॥

भागे तृतीयेऽर्हद्बिम्ब स्यात् द्वितीयेऽम्बिकादय ॥१८॥
आसने वाहने चैव परिवारे तथा युधे ।
नखाभरणवस्त्रेपु व्यङ्गदोषो न जायते ॥ १९ ॥
नासामुखे तथा नेत्रे हृदये नाभिमण्डले ।

स्थानेषु व्यङ्गिताङ्गेषु प्रतिमां नैव पूजयेत् ॥ २० ॥

मण्डल जालक स्फोट तिलक शूलक तथा ।

वज्रा तु सन्धिश्च महा–दोष. प्रकीर्त्तित ॥ २१ ॥

वर्जयेदर्हत. पृष्ठिं पार्श्व ब्रह्ममधुद्विषो. ।

चडिकासूर्ययो दृष्टिं सर्वमेव च शूलिन. ॥ २२ ॥

विभज्य नवधा द्वार तत्षट् भागानधस्त्यजेत् ।

ऊर्ध्वे द्वौ सप्तम तद्वद् विभज्य स्थापयेद् दृशाम् ॥२३॥

विश्वकर्ममते प्रोक्त प्रतिमा दृष्टि लक्षणम् ।

द्वादशास्वाष्टिभिर्भागैरध· पक्षा द्वितीयके ? ॥ २४ ॥

मुक्त्वाऽष्टम विभाग च यो भागः सप्तम पुन ।

तस्यापि सप्तमे भागे गर्जांशस्तत्र सम्भवेत् ॥ २५ ॥

प्रासाद. प्रतिमा दृष्टिः नियोज्या तत्र शिल्पिभि ।

अस्थाने निहिता सा तु सद्यो रिष्टाय जायते ॥ २६॥

दृष्ट्यायत्त फल सर्वं प्रोक्त श्रीविश्वकर्मणा ।

तस्मात् सर्वं प्रयत्नेन तत्र यत्नो विधीयताम् ॥२७॥

॥ इति बिम्ब पूजा स्वरूपम् ॥

प्रतिमार्थे काष्ठपाषाणपरीक्षा



निर्मलेनारनालेन विष्टर्या श्रीफले न वा ।
विलिप्तेऽश्मनी काष्ठे वा प्रकट मङ्गल भवेत् ॥ १

मधुभस्म गुण व्योम—कपोतसदृशप्रभे ।
माञ्जिष्टैररुणै प्रीति कपिलै शामलैरपि ॥ २ ॥

चित्रैश्च मण्डलैरेभिरन्तर्ज्ञेया यथा क्रमम् ।
खद्योतो वालुकारक्तभेकाम्बुगृहगोधिका ॥ ३ ॥

॥ इति काष्ठपाषाणपरीक्षा ॥

